भारत के सच्चे सपूत

(प्रथम भाग)

1

विषय सूची

विषय

मुद्रक—जनता प्रेस, ४२ पथुरिया घाट स्ट्रीट कलकत्ता-६

मेनका जहाँ रहती थी वह इन्द्र का नन्दन-कानन था। भरत भी उसी नन्दन-कानन में प्रायः खेलने जाया करते थे। एक दिन बालक भरत, सिंह के बच्चे के साथ खेल रहे थे। खेल-खेल में ही वे सिंह के बच्चे के दाँत गिनने की चेष्टा कर रहे थे। जिस समय वे सिंह



शावक के दाँत गिन रहे थे उसी समय उनके पिता दुष्यन्त उधर से घूमते हुए आ निकले। उन्होंने बच्चे को सिंह के साथ खेलते देखा तो उन्हें बड़ा आश्चर्य हुआ। साथ ही कौतूहल भी।

राजा ने बच्चे से जब उसका नाम पूछा तो उसने अपना नाम भरत बताया। फिर राजा ने उससे माता-

पिता का नाम पूछा। बच्चे ने माता का नाम भी बता दिया। राजा को पुरानी बातों का स्मरण हो आया और उन्होंने उस वीर बालक को गले से लगा लिया। कुछ समय बाद यही बालक भारत का चक्रवर्ती सम्राट हुआ और उसके नाम पर देश का नाम भारतवर्ष पड़ा।

आदिकवि वाल्मीकि

आदिकवि वाल्मीकि ने रामायण की रचना कब की, इसका कोई निश्चित प्रमाण नहीं मिलता किन्तु, श्री रामकथा से पता चलता है कि भगवान् श्री रामचन्द्र के आदेशानुसार लक्ष्मणजी जब सीताजी को जंगल में छोड़ आये तो वाल्मीकि ने ही उन्हें अपने आश्रम में आश्रय दिया। वहीं भगवती सीता ने लव और कुश नामक दो पुत्रों को जन्म दिया।

वाल्मीकिजी ने लव और कुश दोनों को स्व रचित रामायण का पाठ कराया और उन्होंने श्रीराम दरबार में यह पाठ सुनाया।

बाल्मीकिजी का प्रारम्भिक जीवन बहुत अच्छा न था। कहते हैं कि आरम्भ में वे एक 'डाकू' का जीवन व्यतीत करते थे और लोगों के पीछे 'मारा-मारा' कह कर दौड़ जाते थे। जब वे 'मारा-मारा' कहते तो 'राम-राम' का उच्चारण होता जिससे उनकी बुद्धि परिष्कृत होती गयी। गोस्वामी तुलसीदास ने लिखा है :—



उलटा नाम जपत जग जाना,
वाल्मीकि भये सिद्ध सुजाना।

उन्होंने एक बार बहेलिये के तीर से घायल क्रौंच और क्रौंची को देखा तो उनका हृदय करुणा से भर आया।

इस प्रकार वाल्मीकिजी के जीवन में बहुत बड़ा परिवर्त्तन आया और उन्होंने श्रीराम काव्य की रचना कर अक्षय कीर्ति अर्जित की।

इसके बाद तो श्री 'रामकथा' का बहुत विस्तार हुआ और अनेक 'रामायण' ग्रन्थ लिखे गये किन्तु, आदिकवि होने का गौरव वाल्मीकि को ही प्राप्त हुआ।



मर्यादा पुरुषोत्तम : श्री रामचन्द्र

रामायण की पुस्तक आपने अवश्य देखी होगी क्योंकि, घर-घर में बड़े-बूढ़े रामायण का पाठ करते हैं। यह रामायण क्या है? श्रीराम की कथा है। श्रीराम कौन थे? अयोध्या के चक्रवर्ती सम्राट राजा दशरथ के

ज्येष्ठ पुत्र थे किन्तु, हम उन्हें भगवान मान कर उनकी पूजा करते हैं। क्यों ? क्योंकि वे अपने माता-पिता और गुरु के बड़े भक्त थे तथा अपने छोटे भाइयों से स्नेह रखते थे। वे अपने धर्म का पालन करते थे और सबको सुख पहुंचाते थे। सदा सत्य बोलते थे और



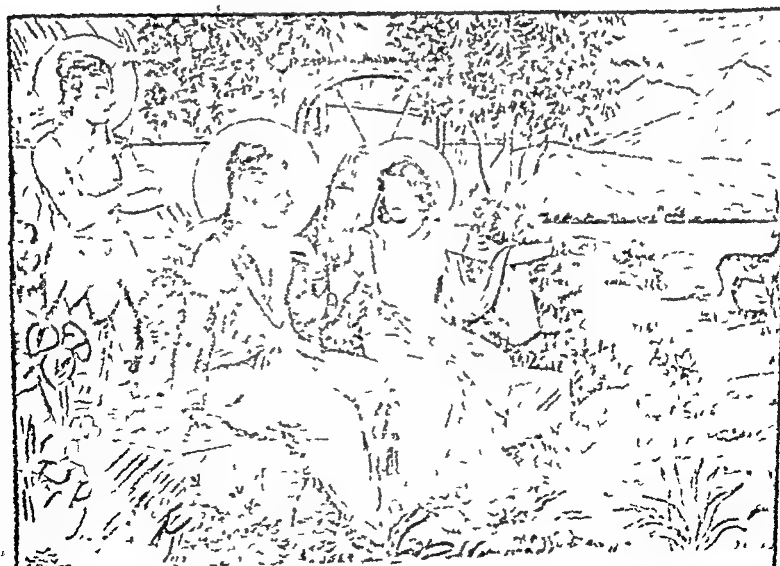
कभी छल-कपट व झूठ का सहारा नहीं लेते थे। उनके राज्य में प्रजा को बड़ा सुख था और किसी के साथ अन्याय नहीं होता था। बाघ-बकरी एक ही घाट पानी पीते थे। ऐसे थे राजा राम।

उनके पिता का नाम दशरथ और माता का नाम कौशल्या था। रामचन्द्रजी चार भाई थे—श्रीराम,

लक्ष्मण, भरत और शत्रुघ्न। चैत्र शुक्ल नवमी को उनका जन्म हुआ था। वशिष्ठजी उनके गुरु थे। गुरु के यहाँ चारों भाई मन लगाकर पढ़ते थे और उनका आदर करते थे। उन दिनों वेद-शास्त्र की पढ़ाई संस्कृत में होती थी। श्रीराम ने थोड़े ही समय में जब वेद-शास्त्रों का अध्ययन पूरा कर लिया तो उन्हें विश्वामित्र मुनि यज्ञ की रक्षा के लिए अपने साथ बक्सर ले गये। साथ में छोटे भाई लक्ष्मणजी भी गये। उन दिनों बक्सर में ताड़का, सुबाहु और मारीच नामक राक्षस साधु-सन्तों को बहुत सताते थे और उन्हें यज्ञ नहीं करने देते थे। श्रीराम उस समय बालक थे पर बड़े वीर और साहसी थे। उन्हींकी तरह उनके छोटे भाई लक्ष्मणजी भी वीर और साहसी थे। दोनों भाई तीर-धनुष चलाने में बड़े निपुण थे। उन्होंने युद्ध में ताड़का और सुबाहु को मार दिया तथा मारीच को ऐसा तीर मारा कि वह बक्सर से भाग कर बहुत दूर पंचवटी में चला गया।

विश्वामित्र मुनि ने बिना किसी विघ्न-बाधा के यज्ञ पूरा किया और श्रीराम तथा लक्ष्मण को लेकर

राजा जनक के यहाँ जनकपुर चले गये जहाँ श्रीराम शिवजी का भारी धनुष तोड़ कर उनकी पुत्री सीता जानकी के साथ व्याह किया। श्रीराम के अन्य भाइ का भी वहीं विवाह हुआ। विवाह के बाद जब चा भाई अयोध्या वापस आये तो राजा दशरथ ने श्रीरा को अपना राज्य देना चाहा किन्तु, मँझली रानी कैके ने राजा से कहा कि उनके बेटे भरत को राज्य औ श्रीराम को १४ वर्ष का वनवास दिया जाय।



श्रीराम ने माता-पिता के आदेश का पालन कि

और अपनी धर्मपत्नी सीताजी तथा भाई लक्ष्मण के साथ वन चले गये। वहीं लंका का राजा रावण छल से उनकी धर्मपत्नी सीताजी को चुरा ले गया किन्तु, श्रीराम हताश न हुए। उन्होंने वानर-भालुओं को संगठित किया और उनकी सहायता से लंका पर चढ़ाई कर दी। युद्ध में रावण को हरा कर वे अपनी धर्मपत्नी सीताजी को छुड़ा लाये और लंका का राज उन्होंने रावण के छोटे भाई विभीषण को दे दिया। इधर उनके छोटे भाई भरत ने भी उनका राज्य नहीं लिया और १४ वर्ष के बाद जब वे अयोध्या लौटे तो उसका राज्य वापस कर दिया।

श्रीराम अयोध्या के राजा हुए और उन्होंने सबको सुख प्रदान किया। उनके जीवन से यह शिक्षा मिलती है कि जो माता-पिता और गुरुजनों का आदर करता है, भाइयों से प्रेम रखता है और सत्य तथा न्याय के रास्ते पर चलता है वह सदा विजयी होता है। लोग उसका आदर करते हैं।

श्रीराम के हुए हजारों-हजार वर्ष हो गये पर आज

भी उनका नाम घर-घर में श्रद्धा से लिया जाता है। मन्दिर बना कर उसको पूजा की जाती है और उनके जीवन पर मोटे-मोटे ग्रन्थ लिखे जाते हैं। वाल्मीकि और तुलसी दास ने रामायण लिख कर बड़ा उपकार किया है। श्रीराम की सबसे बड़ी विशेषता यह थी कि वे अपनी जन्मभूमि से बहुत प्यार करते थे। यहाँ तक की स्वर्ग से भी अधिक उन्हें अपनी मातृभूमि से प्रेम था।

गोस्वामी जी के शब्दों में उन्होंने कहा था—

जन्मभूमि मम पुरी सुहावनि,
उत्तर दिसि वह सरजू पावनि।

—:o:—

वीर बालक नचिकेता

नचिकेता की कथा बहुत पुरानी है। नचिकेता एक अत्यन्त भोला बालक था। उसके पिता ऋषिवाज श्रवस ने जब अपनी सम्पूर्ण सम्पत्ति दान दे दी तो बालक नचिकेता ने उनसे प्रश्न किया—"पिताजी! मुझे आप किसको देंगे?"

पिता मौन रहे। नचिकेता ने पुनः वही प्रश्न किया किन्तु, कोई उत्तर न मिल सका। जब तीसरी बार उसने वही प्रश्न किया तो ऋषि ने झुँझलाकर कह दिया, "मैं तुम्हें मृत्युदेव को सौंप रहा हूँ।"

बालक नचिकेता मृत्युदेव को खोजते हुए यमराज के दरवाजे पर पहुंचा। वह तीन दिन तक वहाँ निराहार बैठा रहा। यमराज उससे बहुत प्रसन्न हुए और उन्होंने नचिकेता से वर माँगने को कहा।

नचिकेता ने यमराज से मृत्यु का रहस्य पूछा और अमरत्व का वरदान माँगा ? यमराज ने स्वयं उसे आत्म विद्या तथा योग का उपदेश दिया। इस तरह वह बालक मृत्यु पर विजयी हुआ।

श्रद्धा एवं संकल्प में बड़ी शक्ति है।

सेवाव्रती हनुमान

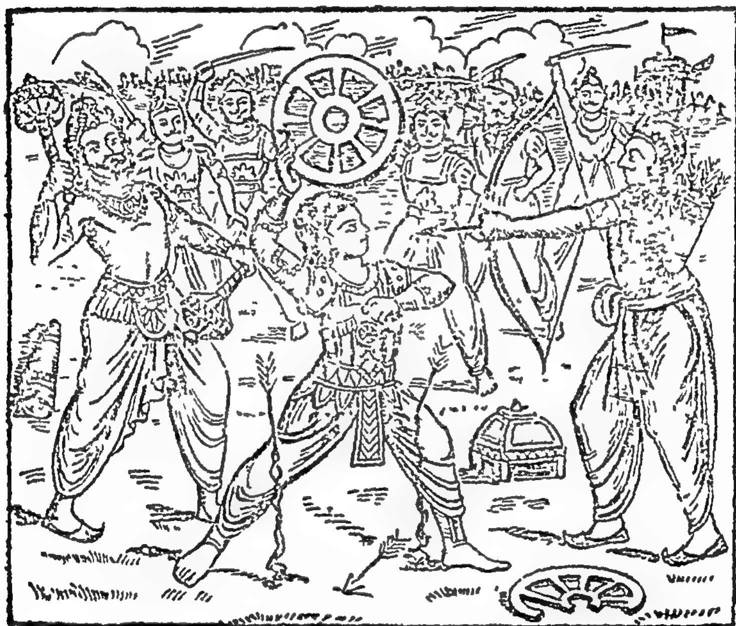
'हनुमानजी का नाम भी आपने अवश्य सुना होगा। उनका एक नाम बजरंग बली भी है। अखाड़े में जब पहलवान ताल ठोंक कर कुश्ती के लिए उतरते हैं तो वे 'जय बजरंगबली' कह कर एक दूसरे से भिड़ते हैं। उनका एक नाम महावीर है। हनुमानजी बहुत बलवान थे और श्रीराम के बड़े भक्त थे। उनकी माता का नाम अंजना देवी और पिता का नाम पवन था। वे वानर वंश में पैदा हुए थे।

जन्म के बाद ही उन्होंने माँ से कहा, "माँ! मुझे बड़ी भूख लगी है।"

माँ ने उत्तर दिया, "जो कुछ लाल वस्तु दिखलायी दे उसे खा जाओ"। और कहते हैं कि हनुमानजी ने सूर्य को ही निगल लिया। इस कथा पर तुम्हें विश्वास नहीं हो सकता किन्तु, सच्चाई यह है कि हनुमानजी बड़े तेजस्वी और ज्ञानी थे। उन्होंने सूर्य को अपना गुरु बनाया और उन्हीं से वेद-शास्त्र व व्याकरण की शिक्षा प्राप्त की। आगे चलकर वे बड़े वीर, पराक्रमी और सुविज्ञ हुए।

वीर बालक अभिमन्यु

महाभारत के युद्ध में जिस वीर बालक ने सात महारथियों को लोहे के चने चबवाये थे और जिसने सिंह



की तरह दहाड़ते हुए अकेले ही चक्रव्यूह में प्रवेश किया था, उसका नाम 'अभिमन्यु' था।

अभिमन्यु तृतीय पाण्डव अर्जुन का बेटा और भग-

वान श्रीकृष्ण चन्द्र का भांजा था। उसकी माता सुभद्रा भगवान श्रीकृष्ण चन्द्र की बहन थी।

अभिमन्यु जब महाभारत के युद्ध में शामिल हुआ तो उस समय उसकी उम्र १६ वर्ष थी। कहावत है, "क्षत्रिय बालक की उम्र नहीं देखी जाती। उसका केवल शौर्य और पराक्रम देखा जाता है।" अभिमन्यु था तो केवल १६ साल का किन्तु. युद्ध-विद्या में वह अपने पिता अर्जुन और मामा श्रीकृष्ण की तरह ही निपुण था।

चक्रव्यूह के भीतर सप्त महारथियों ने जब उस पर एक साथ हमला कर दिया तथा उसके अस्त्र-शस्त्र काट कर फेंक दिये तब भी वह घबड़ाया नहीं। साहस के साथ युद्ध करता रहा। अभिमन्यु जब निःशस्त्र हो गया तो जयद्रथ ने उसे मार दिया। इस प्रकार सोलह साल का बालक अकेले ही कौरवों से युद्ध करते हुए मारा गया।

बताया जाता है कि चक्रव्यूह में वह प्रवेश तो कर सकता था किन्तु उससे बाहर निकलने की कला का उसे ज्ञान न था। भीम तथा दूसरे पाण्डवों ने उसे

आश्वासन दिया था कि वे चक्रव्यूह के भीतर से उसे निकाल लायेंगे पर वे उसके साथ न जा सके। अभिमन्यु ने चक्रव्यूह के मुख्य द्वार पर हमला किया और सप्त महारथियों को परास्त कर वह अकेला ही चक्रव्यूह के भीतर चला गया। पाण्डव-पक्ष में कोई ऐसा न था जो चक्रव्यूह में प्रवेश की कला जानता हो। पाण्डव बड़े सोच-विचार में पड़ गये। युधिष्ठिर, भीम, नकुल, सहदेव कोई भी इस योग्य न था कि द्रोणाचार्य द्वारा निर्मित और जयद्रथ द्वारा रक्षित चक्रव्यूह में प्रवेश कर सके।

अभिमन्यु को जब पाण्डवों की लाचारी का पता चला तो उसे अपने पक्ष का अपमान सहन न हो सका। चक्रव्यूह में प्रवेश करने की कला उसने बाल्यावस्था में ही सीख ली थी। जिस समय महाभारत के युद्ध में द्रोणाचार्य के निर्देशन में कौरव वीरों ने चक्रव्यूह की रचना की उस समय अर्जुन संशप्तकों से युद्ध करते हुए बहुत दूर निकल गये थे। पाण्डव सेना में अर्जुन के अतिरिक्त कोई वीर ऐसा न था जो चक्रव्यूह में प्रवेश करने की

कला जानता हो। अभिमन्यु ने अपने पिता का दायित्व सम्भाला और अकेले सिंह-शावक की तरह व्यूह में प्रवेश कर गया। उसने चक्रव्यूह के छः दरवाजे तोड़ दिये और जब सातवें कक्ष में प्रवेश किया तो सात महारथियों ने उस पर एक साथ हमला कर दिया। वह युद्ध में लड़ते हुए वीरगति को प्राप्त हुआ। पर, अभिमन्यु की. वीरता, धीरता और रण-कुशलता के गीत आज भी घर-घर में पाये जाते हैं। भारत के इस वीर बालक की कथा सुनकर किसका हृदय नहीं पसीज उठेगा ? कविवर मैथिली शरण गुप्त के शब्दों में अभिमन्यु का सन्देश है :—

निज शत्रु का साहस कभी बढ़ने न देना चाहिए,
बदला समर में वैरियों से शीघ्र लेना चाहिए।
पापीजनों को दण्ड देना चाहिए समुचित सदा,
वरवीर क्षत्रिय वंश का कर्त्तव्य है यह सर्वदा।

भीष्म-प्रतिज्ञा

आज से प्रायः साढ़े पाँच हजार वर्ष पूर्व महा-भारत का युद्ध हुआ था। उस युद्ध में बड़े-बड़े योद्धा शामिल हुए थे। भीष्म पितामह कौरवों के सेनापति थे और महावीर अर्जुन पाण्डवों के।

भीष्म ने युद्ध में पाण्डवों के छक्के छुड़ा दिये। वृद्ध होते हुए भी वे युवकों की तरह लड़ रहे थे।

पाण्डव-दल के सेनापति महाधनुर्धर अर्जुन ने शिखण्डी को आगे कर तीर बरसाये, फिर भी वे भीष्म को परास्त न कर सके। भीष्म ने भगवान श्री कृष्ण को भी हथियार सम्भालने के लिए मजबूर कर दिया हालाँकि उन्होंने हथियार न उठाने की प्रतिज्ञा कर रखी थी।

बहुत वीरतापूर्वक लड़ने पर भी भीष्म समर-भूमि में घायल हो गये किन्तु, वे मर न सके। युद्ध भूमि में तीरों की सेज (शय्या) पर पड़े रहे और सूर्य भगवान

के उत्तरायण होने की प्रतीक्षा करते रहे। तकिए के अभाव में उनका सिर लटक रहा था। पाण्डव और कौरव



दोनों उन्हें घेर कर खड़े थे क्योंकि, भीष्म दोनों के दादा थे।

भीष्म ने जब तकिये की माँग की तो कौरव मख-मल के मुलायम तकिये लेकर दौड़े किन्तु, उन्होंने तीसरे पाण्डव अर्जुन की ओर देखा और अर्जुन ने तीर मार कर उन्हें वीरों के योग्य तकिया दे दिया। फिर उन्होंने प्यास शान्त करने के लिए जल की माँग की।

कौरव सोने-चाँदी के कलश में जल लेकर दौड़े किन्तु, भीष्म ने इसे अस्वीकार कर दिया। पुनः तीसरे पाण्डव अर्जुन की ओर देखा। अर्जुन, दादा का मतलब समझ गये। उन्होंने धरती पर तीर मारा और पाताल गंगा की धारायें फूट पड़ीं। भीष्म उस जल को पीकर तृप्त हो गये। भीष्म को इच्छा-मृत्यु का वरदान प्राप्त था। भीष्म की इस शक्ति का मूल कारण उनका ब्रह्मचर्य था। वे बाल ब्रह्मचारी थे। बचपन में ही उनकी माता गंगा की मृत्यु हो गयी थी। पिता सन्तनु हस्तिना-पुर के सम्राट थे। भीष्म युवराज थे। एक दिन सन्तनु कहीं जा रहे थे कि गंगा किनारे एक केवट की कन्या सत्यवती से उनकी भेंट हो गयी। सन्तनु ने सत्यवती से विवाह करना चाहा किन्तु, उसके पिता ने शर्त लगा दी कि यदि सम्राट सत्यवती से उत्पन्न होने वाले पुत्र को राज्य देने का वचन देंगे तो विवाह होगा अन्यथा, नहीं। सन्तनु को शर्त स्वीकार नहीं हुई और वे बिना विवाह के राजधानी लौट आये। भीष्म को किसी तरह इस बात का पता चल गया। पिता की

इच्छा-पूर्ति के लिए वे स्वयं केवट के पास गये और उसे वचन दिया कि सत्यवती से जो सन्तान होगी उसे ही राजतिलक दिया जायेगा। केवट को इससे सन्तोष नहीं हुआ। "उसने कहा, महाराज ! कहीं आपके बच्चों ने यदि राज सिंहासन पर दावा किया तो ?"

भीष्म ने शीघ्र ही उत्तर दिया "मैं आजीवन ब्रह्मचर्य का पालन करूँगा और कभी विवाह न करूँगा।" भीष्म की इस भीष्म-प्रतिज्ञा को सुन कर लोग हक्का-बक्का हो गये। उसी दिन बालक का नाम भीष्म पड़ा। उससे पूर्व उनका नाम देवव्रत था।

भीष्म ने अपने वचन का जीवन भर पालन किया। उन्होंने न तो ब्याह किया और न कभी राज्य-शासन ग्रहण किया। युद्ध वे कौरवों की ओर से कर रहे थे किन्तु, पाण्डवों के प्रति भी उनके हृदय में कम प्यार न था। पिता के लिए पुत्र ने इतना बड़ा त्याग किया हो, ऐसा दृष्टान्त कम मिलता है। भीष्म बहुत बड़े त्यागी, धर्मात्मा, नीतिज्ञ और योद्धा थे। वे वचन के पक्के, दृढ़ और संयमी थे।

उनका जीवन बालकों के लिये अनुकरणीय है।

भगवान शंकराचार्य

भारत की जिस पुण्य-भूमि पर भगवान श्रीरामचन्द्र और भगवान श्रीकृष्ण चन्द्र अवतरित हुए उसी पावन भूमि पर आज से प्रायः १२०० वर्ष पूर्व भगवान शंकराचार्य का आविर्भाव हुआ था। बाल्यावस्था से ही इनके मन में संसार के प्रति वैराग्य उत्पन्न हो गया था और ८ वर्ष की आयु में माता की आज्ञा लेकर इन्होंने संन्यास ग्रहण कर लिया। आठ वर्ष की आयु में ही संन्यासी वेश धारण कर हाथ में दण्ड-कमण्डल लिए शंकर योगीराज गोविन्दपाद की खोज में निकल पड़े और नर्मदा के मध्य अवस्थित ओंकारनाथ पर्वत की गुफा में महायोगी के दर्शन किये। १६ वर्ष की आयु में उन्होंने धर्म प्रचार का कार्य आरम्भ किया और मात्र १६ वर्ष की अवधि में ही उत्तर में हिमालय से लेकर दक्षिण में कन्या कुमारी तक और पश्चिम में द्वारका से लेकर पूर्व में कामरूप-कामक्ष्या तक सनातन हिन्दू धर्म तथा वैदिक संस्कृति का ध्वज फहरा दिया।

वे इस संसार में केवल ३२ वर्षों तक रहे किन्तु, इस छोटी सी अवधि में उन्होंने हिन्दू धर्म का डंका बजा



दिया। जिस समय शंकराचार्य का आविर्भाव हुआ उस समय बौद्ध और जैन धर्म का प्रभाव बढ़ रहा था किन्तु, हिन्दू धर्म का प्रभाव क्षीण हो रहा था। शंकराचार्य ने सम्पूर्ण देश में घूम-घूम कर वैदिक धर्म और संस्कृति का प्रचार किया।

भगवान शंकराचार्य का आविर्भाव भारतके दक्षिण-पश्चिम भाग में स्थित केरल राज्य के एक छोटे से कालाडी ग्राम में वैशाख शुक्ल पंचमी के दिन आचार्य शिवगुरु

के घरमें हुआ था। इनके पिता भगवान शिवके बड़े भक्त और उपासक थे और शिवके वरदानसे ही उन्हें शंकर जैसे ज्ञानी पुत्र की प्राप्ति हुई थी। यह कथा ७८८ ई० की बतायी जाती है। बाल्यावस्था से ही इनकी बुद्धि तीक्ष्ण और स्मरण शक्ति अच्छी थी। तीन वर्ष की आयु में ये मलयालम् साहित्य के उत्तम ग्रन्थों का पाठ कर लिया करते थे। पिता आचार्य शिवगुरु ने पुत्र को शास्त्रों के पठन-पाठन का प्रेरणा दी। नम्बुद्री ब्राह्मण होने के नाते वे पुत्र को सर्वशास्त्रविद् बनाना चाहते थे किन्तु, विधाता को यह मंज़ूर न था। आचार्य शिवगुरु सहसा परलोक गमन कर गये और इनके लालन-पालन का भार माता विशिष्टा देवी पर पड़ा जो स्वयं बड़ी धर्म पारायण महिला थीं। ५ वर्ष की आयु में शंकर का उपनयन हो गया। कहा जाता है कि सात वर्ष की आयु में ही उन्होंने वेद-वेदान्त, स्मृति-पुराण आदि का अध्ययन समाप्त कर लिया।

आठ वर्ष की आयु में माता विशिष्टा देवी की अनुमति लेकर शंकरओंकारनाथ द्वीप पर महायोगी गोविन्द

पाद के पास चले गये और तीन वर्षों की अवधि में उन्होंने योग-सिद्ध और तत्वज्ञान प्राप्त कर लिया। फिर गुरु के आदेश से वे काशी धाम आये और यहीं उन्होंने धर्म–प्रचार का कार्य आरम्भ किया। उन्होंने भारत के समस्त धामों और तीर्थों की यात्रायें की और वेदान्त पर भाष्य लिखे। चार वर्षों में उन्होंने १६ शास्त्र ग्रन्थों के महाभाष्य लिखे। उपनिषद्, भगवद्गीता, ब्रह्मसूत्र आदि के भाष्य विख्यात हुए। कुमारिल भट्ट से भी इनकी भेंट हुई। महिष्मती नगरी में इन्होंने मण्डन मिश्र से शास्त्रार्थ किया जिसमें पं० मण्डन मिश्र पराजित हुए।

शंकराचार्य का जब पं० मण्डन मिश्र से शास्त्रार्थ हुआ तो उसमें निर्णायक का काम पं० मण्डन मिश्र की पत्नी भारती देवी को सौंपा गया। बाद में शंकराचार्य का भारती देवी से भी शास्त्रार्थ हुआ और मण्डन मिश्र तथा उनकी पत्नी भारती देवी दोनों ने उनका शिष्यत्व ग्रहण किया। कहते हैं कि मण्डन मिश्र के घर के शुक और सारिका भी शास्त्रार्थ करने की क्षमता रखते थे।

शंकराचार्य ने द्वारका में शारदा पीठ; पुरी में गोवर्द्धन पीठ, बदरिकाश्रम में ज्योतिष्पीठ और श्रीरामेश्वरम् में शृंगेरी पीठकी स्थापाना की। इन चार पीठों की स्थापना करके उन्होंने हिन्दू धर्म का बड़ा कल्याण किया।

३२ वर्ष की आयु में भगवान शंकराचार्य समाधिस्थ हो गये।

गुरु गोविन्द सिंह

चिड़ियों से जब बाज लड़ाऊँ
गुरु गोविन्द तब नाम मैं पाऊँ।

यह चिड़ियों से बाज लड़ाने वाले कौन थे? इस प्रश्न का उत्तर ढूँढ़ने के लिए कहीं दूर नहीं जाना पड़ेगा। सिक्खों के दसवें और अन्तिम गुरु गोविन्द सिंह ऐसे ही वीर और पराक्रमी पुरुष थे जिन्हें चिड़ियों से बाज लड़ाने में मजा आता था।

गुरु नानक देव ने जहाँ सिक्ख मत की स्थापना की वहीं गुरु गोविन्द सिंह ने सिक्खों को वीर और पराक्रमी बनाया। उन्होंने सिक्खों को स्वदेश और स्वधर्म की रक्षा के लिए मर मिटने की प्रेरणा दी।

गुरु गोविन्द सिंह का जन्म पटना सिटी के हर मन्दिर गली में हुआ था जो सिक्खों का एक प्रसिद्ध तीर्थ स्थान है बाल्यावस्था से ही गुरुजी ने तीर-तलवार चलाने और कुश्ती लड़ने का अभ्यास किया। कहते



हैं कि उनके तीरों के चारों ओर सोने का एक चक्र लगा रहता था जो उनके तीर से मरने वाले की विधवा को दे दिया जाता था या घायल होनेवाले को चिकित्सा पर खर्च होता था। गुरु गोविन्द सिंह ने सिक्खों में खालसा पन्थ चलाया और सिक्खों के लिए कंघा, कच्छ कृपाण, केश तथा कड़ा रखना अनिवार्य कर दिया।

उन्होंने कई लड़ाइयों में भाग लिया और शत्रुओं से जमकर संघर्ष किया। दिल्ली के मुगल बादशाह ने जब उनके चारों बेटों को जिन्दा ही दीवार में चुनवा दिया तो गुरु ने केवल इतना ही कहा :—

चार मरे तो क्या हुआ,
जीवित कई हजार।

उन्होंने हिन्दी में भजन लिखे और पद्यों की रचना की। गुरु गोविन्द सिंह जितने बड़े योद्धा थे उतने ही बड़े कवि भी थे। उन्हींके प्रयत्नों से आगे चलकर सिक्खों ने महाराज रणजीत सिंह के नेतृत्व में सिक्ख-साम्राज्य की स्थापना की। पंजाब में सिक्खों का राज्य सन् १७६७ से १८३७ तक रहा तथा अंग्रेजों ने उनके साथ समानता और मित्रता की सन्धि की।

गुरु गोविन्द सिंह भारत माता के महान् सपूत थे। उन्होंने हिन्दू धर्म की रक्षा के लिए भी बहुत कुछ किया। हिन्दुओं और सिक्खों पर उनके अगणित उपकार हैं।

गुरु गोविन्द दोनों खड़े,
काको लागूँ पाँव,
बलिहारी वा गुरु को,
जिन गोविन्द दीन बताय।

बहादुरशाह 'ज़फ़र'

गाजियों में जब तलक 'बू' रहेगी ईमान की।
तेग लन्दन तक चलेगी तब तलक हिन्दुस्तान की।

—ज़फर

बहादुरशाह 'ज़फ़र' हिन्दुस्तान के अन्तिम मुगल सम्राट् थे। हिन्दुस्तान की आज़ादी की लड़ाई में उन्होंने बहुत बड़ा हिस्सा लिया था। वे उच्चकोटि के शायर और कवि थे तथा 'ज़फर' नाम से कवितायें लिखा करते थे।

सन् १८५७ में जब अंग्रेजी शासन के विरुद्ध सिपाही विद्रोह हुआ तो उसका नेतृत्व बहादुरशाह 'ज़फ़र' ने ही किया। कानपुर में नाना साहब, तात्याटोपे, झाँसी में रानी लक्ष्मी बाई और बिहार में जगदीशपुर के बाबू कुँवर



सिंह ने जहाँ सैन्य-विद्रोह का नेतृत्व किया वहीं दिल्ली में बूढ़े बहादुरशाह 'जफ़र' के कन्धों पर नेतृत्व का भार पड़ा किन्तु, जब विद्रोह दबा दिया गया तो बहादुरशाह गिरफ्तार कर विदेश भेज दिये गये तथा उनके शाहजादों की अंग्रेजों ने निर्मम हत्या कर दी। बहादुरशाह इससे विचलित नहीं हुए क्योंकि उनके हृदय में देश की आजादी की लहरें हिलोरें ले रही थीं।

उन्होंने हिन्दुस्तान की आजादी के लिए हिन्दुओं और मुसलमानों को एकता के सूत्र में बाँधने का यत्न किया तथा इसमें सफल भी रहे। सन् १८५७ के सैन्य विद्रोह के समय इस देश की आजादी के लिए हिन्दू और मुसलमान कन्धा से कन्धा भिड़ा कर लड़े जिसका बहुत बड़ा श्रेय बहादुरशाह को ही है।

आज भी देशभक्तों की पंक्ति में बहादुरशाह 'जफ़र' का नाम बड़े आदर के साथ लिया जाता है क्योंकि, मातृभूमि की स्वतन्त्रता के लिए उन्होंने बहुत बड़ी कुर्बानी की।

बाबू कुँवर सिंह

अस्सी वर्षों की हड्डी में,
जागा जोश पुराना था,
सब कहते हैं कुँवर सिंह
बड़ा वीर मरदाना था।

सन् १८५७ के सैन्य-विद्रोह के नेता वीर बाँकुड़ा बाबू कुँअर सिंह के सम्बन्ध में ऊपर जो कुछ कहा गया है उसमें रंचमात्र भी किसी को सन्देह नहीं है।



वीरवर बाबू कुँवर सिंह का जन्म बिहार प्रान्त के शाहाबाद जिले के जगदीश-पुर ग्राम में एक प्रतिष्ठित राजपूत जमीन्दार के घर में हुआ था। बाल्यावस्था से ही इन्हें कुश्ती लड़ने, शिकार खेलने और तलवार चलाने का बड़ा शौक था। पढ़ने-लिखने में इनका मन कम लगता था।

दीन-दुखियों के प्रति उदार, दयावान और दान-शील थे पैसे का कोई मोह न था तथा खुल कर खर्च किया करते थे

दानापुर की भारतीय फौज ने सन् १८५७ में जब अँग्रेजों के खिलाफ विद्रोह किया तो उसने बाबू कुँअर सिंह को ही अपना नेता बनाया। बाबू साहब की उम्र उस समय ८० वर्ष के आस-पास थी किन्तु, उनमें युवकों की तरह उत्साह और जोश था। देशकी आजादीकी लौ उनके हृदय में जल चुकी थी। दानापुर की फौजी छावनी पर अधिकार करने के बाद उन्होंने आरा शहर पर कब्जा कर लिया। बिहार और पूर्वी उत्तर प्रदेश के इलाके उन्होंने अँग्रेजों से मुक्त कर लिये। कई लड़ाइयों में उनको विजय हुई तथा कुछ समय के लिए अँग्रेजों का नामोनिशान मिट गया। पर, भारत की भाग्य लक्ष्मी अभी प्रसन्न नहीं हुई थीं। आपसी फूट और विश्वासघात के कारण विद्रोहियों के पाँव उखड़ने लगे, फिर भी, बाबू कुँअर सिंह ने धैर्य का परित्याग नहीं किया। कुछ मोर्चों से उन्हें पीछे हटने के लिए विवश

होना पड़ा। गंगा पार करते समय अंग्रेज सैनिक की एक गोली बाँह में लगी और बाँह काट कर उन्होंने गंगाजी को भेंट कर दी। कुँअर सिंह अँग्रेजों के हाथ नहीं आये किन्तु, कब, किस स्थिति में मृत्यु हुई इसका भी पता किसी को नहीं है।

जो भी हो, बाबू कुँअर सिंह ने वृद्धावस्था में बड़ी वीरता का परिचय दिया और देश को कुछ समय तक आजाद रखने में वे सफल रहे। वस्तुतः, वे एक महान देशभक्त थे। स्वयं अँग्रेज सेनापतियों ने उनकी रणकुशलता की प्रशंसा की है।

महर्षि दयानन्द सरस्वती

महर्षि दयानन्द सरस्वती आर्य समाज के संस्थापक थे। आर्य समाज के जरिये उन्होंने वेदों का प्रचार किया तथा छुआछूत और पाखण्ड का प्रबल विरोध किया। आर्यसमाज का द्वार उन्होंने उन लोगों के लिए भी खोल दिया जो छोटी जाति के होने के कारण हेय दृष्टि से देखे जाते थे।

महर्षि दयानन्द सरस्वती का प्रारम्भिक नाम मूल शंकर था तथा उनका जन्म गुजरात (काठियावाड़) के एक प्रतिष्ठित ब्राह्मण परिवार में हुआ था। एक दिन शिवरात्रि के अवसर पर वे पिता के साथ शिव मन्दिर गये और शिव की पूजा-अर्चा के बाद वहीं मंदिर में रात्रि-जागरण करते रहे।

अर्द्धरात्रि व्यतीत होने के बाद जब सब लोग सो गये तो उन्होंने चूहों को शिव लिंग पर घूमते देखा। उसी समय मूर्ति पूजा से उनका विश्वास उठ गया।

मूलशंकर का जन्म विक्रम सम्वत् १८८१ के पौस मास में एक औदिच्य ब्राह्मण परिवार में हुआ था।

उनके पिता का नाम पण्डित अम्बा शंकर था। कार्तिक सुदी २ सम्वत् १९१७ को आप अध्ययन करने के लिए मथुरा के स्वामी विरजानन्द जी महाराज के पास पहुंचे और वहीं रह कर वेदों का अध्ययन किया। स्वामी जी प्रतिदिन प्रातःकाल उठ जाते थे और नित्य क्रिया



तथा सन्ध्योपासना से निवृत्त होकर गुरु के लिए स्वयं नदी से जल लाते थे। यहाँ रह कर इन्होंने अष्टाध्यायी, महा भाष्य, व्याकरण आदि का अध्ययन किया तथा पूर्ण ब्रह्मचर्य व्रत का पालन करते रहे। विद्यार्थी जीवन में इन्होंने अनेक कष्ट झेल कर ज्ञान अर्जित किया। जब

अध्ययन समाप्त हो गया तो गुरु ने इन्हें उपदेश दिया "देश का उपकार करो। शास्त्रों का उद्धार करो। अविद्या और अज्ञान को मिटा कर वैदिक धर्म फैलाओ।"

इसके बाद स्वामी दयानन्द सरस्वती ने घूम-घूम कर वैदिक धर्म का प्रचार किया। वे कलकत्ता भी आये जहाँ उनकी मुलाकात ब्रह्मसमाज के आचार्य केशवचन्द्र सेन से हुई और उन्हींके अनुरोध पर उन्होंने हिन्दी में व्याख्यान देना तथा पुस्तकें लिखना आरम्भ किया ताकि साधारण लोग भी उससे लाभ उठा सकें।

स्वामी जी ने हिन्दी के प्रचार व प्रसार के लिए बहुत प्रयत्न किया। गांधी जी ने उनके सम्बन्ध में लिखा है—"उनके जीवन का प्रभाव हिन्दुस्तान पर बहुत अधिक पड़ा।" विश्वकवि रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने लिखा है कि वे आधुनिक भारत के मार्ग दर्शक थे। नेता जी सुभाष चन्द्र बोस ने लिखा है, "स्वामी दयानन्द सरस्वती उन महापुरुषों में थे जिन्होंने आधुनिक भारत का निर्माण किया।"

वस्तुतः, स्वामी दयानन्द सरस्वती का इस देश पर महान ऋण है।

लोकमान्य तिलक

"स्वतन्त्रता हमारा जन्मसिद्ध अधिकार है", ये शब्द हैं महाराष्ट्र केसरी लोकमान्य बाल गंगाधर तिलक के जो आज भी भारत के वायुमण्डल में गूँज रहे हैं।

उन्होंने सर्वप्रथम भारतीयों को यह बताया कि स्वराज्य लेना हमारा जन्मसिद्ध अधिकार है और हम इसे लेकर रहेंगे। देश की आजादी की लड़ाई में तिलक महाराज ने बहुत बड़ा हिस्सा लिया। अपने उग्र विचारों से उन्होंने अंग्रेज शासकों को आतंकित कर दिया था।

उन दिनों देश में 'लाल, बाल और पाल' की तूती बोलती थी।

पंजाब के लाला लाजपत राय, महाराष्ट्र के लोकमान्य बाल गंगाधर तिलक और बंगाल के श्री विपीन चन्द्रपाल, ये तीनों नेता उग्र विचारों के देशभक्त माने जाते थे। तिलकजी का महाराष्ट्र में बड़ा प्रभाव था। उन्होंने केसरी और मराठा जैसे पत्रों के माध्यम से स्वतन्त्रता की ज्वाला धधकायी। राजद्रोह के मामले में उनको कारादण्ड मिला था और कारावास में ही

उन्होंने 'गीता-रहस्य' नामक विख्यात ग्रन्थ लिखा। न्यायाधीश ने जब छः साल कारावास की सजा सुनायी तो उन्होंने इतना ही कहा, 'बस'।



तिलक जी संस्कृत अंग्रेजी, मराठी और हिन्दी के पण्डित थे। भाषाओं पर उनका पूरा अधिकार था। उनका जीवन सादा था।

सर पर पगड़ी बाँधे हुए उनका विराट् व्यक्तित्व बड़ा ही आकर्षक था। उनके भाषण लोग मंत्र मुग्ध होकर सुनते थे। कलकत्ता के राजभवन के समक्ष उनकी

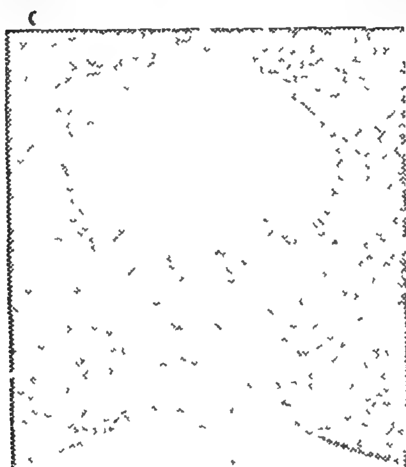
जो विशाल मूर्ति लगी है वह उनके व्यक्तित्व को स्मरण दिलाती है।

तिलकजी धार्मिक प्रवृत्ति के और क्रान्तिकारियों के आश्रयदाता थे। महाराष्ट्र में एक बार जब सन् १८९७ में प्लेग आया तो उन्होंने घूम-घूम कर पीड़ितों की सेवा की। महाराष्ट्र में गणेशजी के सामूहिक पूजन का उत्सव उन्होंने ही आरम्भ किया। वे उच्च कोटि के देशभक्त, विद्वान और अध्येता थे। स्वाध्याय के लिए वे बहुत समय दिया करते थे। आज तिलकजी को मरे हुए काफी समय हो गया किन्तु; देशभक्तों के लिए उनकी स्मृति सदैव प्रेरणादायक बनी रहेगी।

अध्यापक से राष्ट्रपति

भारत के द्वितीय राष्ट्रपति डा० सर्वपल्ली राधाकृष्णन को भला कौन नहीं जानता ? डा० राधाकृष्णन संसार के सबसे बड़े दार्शनिक और विचारक रहें हैं। संस्कृत और अंग्रेजी साहित्य के वे प्रकाण्ड पंडित हैं तथा दर्शन शास्त्र पर अनेक पुस्तकें भी लिखी हैं।

भारत के प्रथम राष्ट्रपति देशरत्न डा० राजेन्द्र प्रसाद ने सन् १९६२ में जब राष्ट्रपति के पद से अवकाश ग्रहण किया तो डा० सर्वपल्ली राधाकृष्णन ही राष्ट्रपति निर्वाचित हुए। इससे पूर्व वे भारत के उपराष्ट्रपति थे।



स्वर्गीय पं० जवाहर लाल नेहरू उनका बड़ा सम्मान किया करते थे।

डा० राधाकृष्णन दाक्षिणात्य ब्राह्मण हैं तथा प्रारम्भ से ही उनकी रुचि अध्ययन और अध्यापन की ओर रही है। कलकत्ता विश्वविद्यालय और काशी हिन्दू विश्व-

विद्यालय में उन्होंने अध्यापक के रूप में बड़ी प्रतिष्ठा अर्जित की थी। छात्रों के वे अत्यन्त प्रियपात्र थे।

१५ अगस्त १९४७ को जब देश स्वतन्त्र हुआ तो उन्हें सोवियत रूस में भारत का राजदूत नियुक्त किया गया। सोवियत प्रधानमंत्री स्वर्गीय श्री जोसेफ स्तालिन जब इनसे पहली बार मिले तो इनके दार्शनिक विचारों से बड़े प्रभावित हुए और उन्होंने यह स्वीकार किया कि डा० राधाकृष्णन वास्तव में गुरुओं के गुरु हैं। वे आध घण्टे तक डा० राधाकृष्णन की बातें सुनते रहे। रूस और भारत की मित्रता बढ़ाने में डा० राधाकृष्णन का बड़ा हाथ रहा है।

उपराष्ट्रपति और राष्ट्रपति के रूप में इन्होंने देश की बड़ी सेवा की और शिक्षकों का मान बढ़ाया। अमेरिका के राष्ट्रपति केनेडी भी इनसे बड़े प्रभावित थे। इनका व्यक्तित्व बड़ा ही आकर्षक है।

सिर पर पगड़ी और अंगरखा धारण किये हुए डा० राधाकृष्णन भारतीय संस्कृति और परम्परा के मूर्त रूप हैं। भारत को इस महापुरुष के लिये गर्व है। इनके उत्कर्ष का कारण महान अध्ययन और ज्ञान है। सरलता सादगी, शालीनता और विनम्रता इनके विशेष गुण हैं।

डा० जाकिर हुसेन

भारत के तीसरे राष्ट्रपति डा० जाकिर हुसेन भी एक अध्यापक रहे हैं। इन्होंने अपने जीवन का अधिक समय दिल्ली के जामिया मिलिया को दिया है। हिन्दू और मुसलमान दोनों इनके शिष्य हैं।

डा० जाकिर हुसेन का जन्म हैदराबाद में सन् १८९७ के फरवरी मास में एक अफगान के परिवार में हुआ था इनका पैतृक निवास-स्थान उत्तर प्रदेश के फर्रुखाबाद जिले के कायमगंज नामक छोटे से कस्बे में था। परिवार के सात बच्चों में इनका स्थान तीसरा था किन्तु, ६ वर्ष की आयु में ही इन्हें पिता के सुख से वंचित होना पड़ा। पिता की मृत्यु के बाद इन्हें उत्तर प्रदेश के अपने पैतृक ग्राम में आना पड़ा। फिर इटावा के इस्लामिया स्कूल में इन्हें दाखिल कराया गया। यहाँ इन्हें मोटा कपड़ा पहनना पड़ता था तथा मोटा अन्न खाना पड़ता था। केश छोटे रखने पड़ते थे। स्कूल-कालेज में पढ़ते समय ये बड़े प्रतिभा सम्पन्न छात्र सिद्ध हुए। प्रतिभा के धनी तो थे ही, मुल्क की आजादी की भावनायें भी इनके

हृदय में हिलोरें ले रही थी। १८ साल की उम्र में ही इनकी शादी हो गयी।

सन् १९२० में डा० जाकिर हुसेन मोहम्मडन ऐंग्लो ओरियण्टल कालेज में जब एम० ए० के छात्र थे



तभी वे गाँधीजी के सम्पर्क में आये। गाँधी जी के साथ मौलाना मोहम्मद अली और शौकत अली भी थे। डा० जाकिर हुसेन की उम्र उस समय २३ साल की थी किन्तु, गाँधी जी के अनुरोध पर उन्होंने पढ़ना-लिखना

छोड़ दिया और असहयोग आन्दोलन में शामिल हो गये। इसके बाद ही जामिया मिलिया कालेज यानी राष्ट्रीय मुस्लिम विश्व विद्यालय की स्थापना की गयी।

जामिया मिलिया में दो साल तक अध्ययन करने के पश्चात् डा० हुसेन इटली होते हुए जर्मनी चले गये और वहीं उन्होंने बर्लिन विश्व विद्यालय से अर्थशास्त्र में पी० एच० डी० की उपाधि ली। स्कैण्डेनेवियन देशों की यात्रा करते हुए इन्होंने गाँधी जी पर अनेक लेख लिखे और भाषण किये। यूरोप से लौटने के बाद डा० जाकिर हुसेन मात्र २६ साल की आयु में जामिया मिलिया के उपकुलपति बनाये गये। डा० जाकिर हुसेन और उनके सहकर्मियों ने, जिनमें से अधिकांश कैम्ब्रिज, आक्सफोर्ड और बर्लिन के स्नातक थे। यह निश्चय किया कि अध्यापन के लिए वे १०० रुपये प्रति मास से अधिक वेतन नहीं लेंगे। डा० जाकिर हुसेन ने भी मात्र १०० रुपये प्रतिमाह वेतन लेकर जामिया मिलिया की २२ वर्षों तक सेवायें की।

विश्व विद्यालय के उपकुलपति रहते हुए भी डाक्टर

साहब प्राथमिक और माध्यमिक विद्यालय के छात्रों को पढ़ाना पसन्द करते थे उनका विश्वास था कि अगर छात्रों की बुनियाद मजबूत रही तो वे किसी दिन अच्छे नागरिक होंगे। डा० जाकिर हुसेन के कारण ही महात्मा गाँधी ने अपने छोटे पुत्र देवदास को पढ़ने के लिए जामिया मिलिया में भेजा। वहाँ बहुत से हिन्दू छात्र भी पढ़ने गये।

डा० जाकिर हुसेन बुनियादी तालिम के अनुसन्धानकर्त्ता हैं। साहित्य, विज्ञान, कला और समाज सेवा के क्षेत्र में उनकी सेवायें बहुमूल्य रही हैं। डा० जाकिर हुसेन ५५ वर्ष की आयु में राज्य सभा के सदस्य हुए थे और ८ साल तक अलीगढ़ विश्व विद्यालय के उपकुलपति भी रहे। विश्व विद्यालय अनुदान आयोग के सदस्य और बिहार के राज्यपाल के रूप में भी आपकी सेवायें विस्मृत नहीं की जा सकतीं। भारत के उप-राष्ट्रपति और राष्ट्रपति के रूप में आपकी सेवायें मूल्यवान रही हैं।

डा० जाकिर हुसेन चतुर्थ आम निर्वाचन के बाद

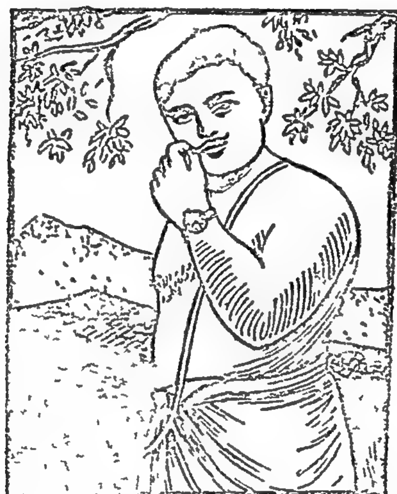
सन् १९६७ में भारत के तृतीय राष्ट्रपति निर्वाचित हुए। अल्पसंख्यक सम्प्रदाय के होते हुए भी आप बहुसंख्यक जनता के विश्वासभाजन हैं। डा० राधाकृष्णन के बाद आप दूसरे अध्यापक हैं जिन्हें राष्ट्रपति के सर्वोच्च पद पर प्रतिष्ठित किया गया है। भारतीय संविधान की यह विशेषता है कि राष्ट्रपति और प्रधान मन्त्री के पद पर कोई भी नागरिक, चाहे वह स्त्री हो या पुरुष, हिन्दू हो या मुसलमान, निर्वाचित हो सकता है। डा० जाकिर हुसेन इसके प्रमाण हैं। वे उदार, मिलनसार और विद्वान हैं।

क्रान्तिकारी वीर चन्द्रशेखर आजाद

शहीदों की चिताओं पर,
जुड़ेंगे हर बरस मेले।
वतन पर मरने वालों का,
यही बाकी निशां होगा।

जिसके हृदय में देशप्रेम की लौ लगी हो, जो मातृभूमि का अनन्य पुजारी हो और जिसने कभी

मृत्यु से भी भय खाना न सीखा हो उस क्रान्तिदर्शी वीर की अमर गाथा स्मरण कर किसके हृदय सागर में राष्ट्रप्रेम की लहरें हिलोरें नहीं लेने लगेंगी! भारत की आजादी के लिए जिन लोगों ने अपने शीश सुमन अर्पित किये उनमें अमर क्रान्तिकारी श्री चन्द्रशेखर



आजाद का नाम कुछ ऐसा ही है जिसे स्मरण करने मात्र से देशभक्ति की भावनाएँ उमड़ आती हैं। इस क्रान्तिकारी का जन्म अलीराजपुर रियायत की भाँवरा तहसील में २३ जुलाई सन् १९०६ को हुआ बताया जाता है किन्तु, १२ वर्ष की आयु में ही उन्हें

घर छोड़ने के लिए विवश होना पड़ा। कुछ समय तक उन्हें बंबई में भी रहना पड़ा तथा क्षुधा तृप्ति के हेतु कठोर परिश्रम करने के लिए बाध्य होना पड़ा, किन्तु जिसे देश की आजादी की क्षुधा सता रही हो उसे भला तृप्ति कैसे मिल पाती ?

पण्डित जी कुछ समय के बाद वराणसी वापस आ गये और वहाँ विद्याध्यन तथा व्यायाम करने लगे। फलतः, एक ओर शरीर सुडौल होता गया तो दूसरी ओर मस्तिष्क भी विकसित होता गया।

आचार्य नरेन्द्र देव जैसे विख्यात शिक्षाविद् और देश सेवक की कृपा के फलस्वरूप पंडित चन्द्रशेखर आजाद काशी विद्यापीठ में दाखिल हुए जहाँ आपको विद्यालय के पाठ्य-क्रम के साथ देशभक्ति के कुछ पाठ भी पढ़ने पड़े। संस्कृत और हिन्दी की शिक्षा आपने यहीं प्राप्त की किन्तु, अध्ययन का यह सिलसिला अधिक दिनों तक न चल सका। विद्यापीठ के अन्य छात्रों और अध्यापकों की तरह आपने भी महात्मा गाँधी के नेतृत्व में राष्ट्रीय आन्दोलन में भाग लिया तथा

'महात्मा गाँधी की जय' और 'वन्देमातरम्' नारे लगाने के कारण मजिस्ट्रेट ने आपको १५ कोड़ों की सजा दी। आजाद उस समय बालक थे किन्तु बार बार कोड़ों की मार खा कर भी आप अपने संकल्प से विचलित न हो सके। ११ कोड़े लगने तक आप महात्मा गाँधी की जय' और 'वन्देमातरम्' के नारे लगाते रहे। कोड़े-पर-कोड़े पड़ते गये किन्तु आजाद के मुँह से न तो आह निकली, न चीख। पीड़ा और वेदना को उन्होंने सहज घूँट की तरह पी लिया और हर बार केवल वन्दे मातरम् तथा महात्मा गाँधी की जय के नारे ही लगाते रहे।

बालक आजाद के साथ एक और अद्भुत घटना घटा। दण्डाज्ञा सुनाने के पूर्व मजिस्ट्रेट ने उनसे पूछा, 'आपका नाम?' युवक ने निर्भय होकर उत्तर दिया 'आजाद'। फिर उसने पूछा, 'पिता का नाम?' उत्तर मिला 'स्वाधीन!' तीसरा प्रश्न था, निवास स्थान?' उत्तर मिला 'जेलखाना।'

'आजाद' के जीवन पर उन क्रान्तिकारियों का अधिक प्रभाव पड़ा था जो उनसे पहले देश को स्वतन्त्रता के लिए एक हाथ में श्रीमद्भगवद्गीता और दूसरे हाथ में फाँसी का फन्दा लिये हुए फाँसी के तख्ते पर हँसते-हँसते झूल गये थे। चापेकर—बन्धु, मास्टर अमीचन्द, अवध बिहारी, खुदीराम बोस आदि के बलिदानों की कहानियों ने उन्हें बहुत प्रेरित किया। उनके साथियों में रामप्रसाद बिस्मिल, शहीद भगत सिंह, बटुकेश्वर दत्त आदि थे। लाला हरदयाल, वीर सावरकर मैडम कामा, कृष्णजी वर्मा, राजा महेन्द्र प्रताप, रासबिहारी बसु आदि क्रान्तिकारियों की वीरता की कहानियों की तरह आजाद की वीरता की कहानियाँ भी देशभक्तों के लिए उत्साह और प्रेरणा के स्रोत का काम करती हैं। आजाद जीते जी अँग्रेजों के हाथ नहीं आये। इलाहाबाद के अल्फ्रेड पार्क में उन्हें उस समय गोली मारी गयी जब कि वे उद्यान में विश्राम कर रहे थे। फिर भी मृत्युसे पूर्व उन्होंने विदेशी सरकार के अनेक एजेण्टों को मौतके घाट उतार दिया।

उनकी मृत्यु से भारत के क्रान्तिकारी आन्दोलन को बड़ी शक्ति मिली किन्तु, देश ने एक ऐसे महान सपूत को खो दिया जो साहस, धैर्य, पराक्रम और बलिदान का पुतला था। यद्यपि आजाद का नश्वर शरीर अब इस संसार में नहीं रहा तथापि उनकी वीरता, धीरता और त्याग की कहानी तब तक कही जायेगी जब तक चाँद और सूरज हैं।

मौत को चुनौती देने वाला वीर

विपत्तिकाल में ही राष्ट्रीयता और मानवता दोनों की परीक्षा होती है। आजादी मिलने के कुछ ही वर्ष बाद सन् १९६२ में जब चीन ने तथा सन् १९६५ में पाकिस्तान ने भारत पर आक्रमण कर दिया तो भारत की राष्ट्रीयता और मानवता दोनों के लिए परीक्षण की घड़ी आयी। इस परीक्षा में भारत पूर्णतः सफल रहा। इस सफलता का श्रेय देश के जवानों को है। पहाड़ों की गुफाओं और सघन वनों में जाकर जवानों ने जिस तरह से मातृभूमि की रक्षा की उसे

स्मरण कर रोंगटे खड़े हो जाते हैं। लेफ्टिनेन्ट जनरल हरबख्श सिंह ऐसे ही सैनिक नेताओं में से एक हैं। लेफ्टिनेन्ट जनरल हरबख्श सिंह में गजब की फुर्ती, चुस्ती और दिलेरी थी। वे बिजली की तरह देश की पश्चिमी सीमा पर कौंध उठते थे। जम्मू-कश्मीर, पंजाब और राजस्थान की सीमाओं पर पाकिस्तानियों ने जब हमले कर दिये तो उनके हमले को विफल बनाने का दायित्व ले० जनरल हरबख्श सिंह ने ही ग्रहण किया। वे उस समय पश्चिमी कमान के सेनानायक थे।

लेफ्टिनेन्ट जनरल हरबख्श सिंह का जन्म १ ली अक्टूबर सन् १९१३ को पंजाब के जिन्द गाँव में हुआ और सन् १९३५ में आपने भारतीय सैन्य अकादमी से कमीशन प्राप्त किया। उस समय आपकी उम्र केवल २२ वर्ष थी किन्तु, इसी उम्र में आपने हथियार सम्हाल लिये। तीन वर्ष बाद आपको क्वेटा के जंगलों और रेगिस्तानों में फौजी ट्रेनिंग मिली और १९४२ में युद्ध के लिए मलाया भेज दिया गया। उस समय इस देश

में अँग्रेजों का शासन था और अँग्रेज मलाया में जापानियों के विरुद्ध युद्धरत थे। लेफ्टीनेन्ट जनरल हरबख्श सिंह सिंगापुर के युद्ध में आहत हो गये तथा जापानियों ने उनको युद्ध बन्दी बना लिया। इसके बाद सन् १९४५ से १९४७ के मध्य आपने कई पदों पर काम किया किन्तु, सन् १९४८ में वह ऐतिहासिक अवसर आया जबकि स्वतन्त्र भारत को सेना में ब्रिगेड कमाण्डर के पद पर नियुक्त किये गये। उसी समय पाकिस्तानी हमलावरों ने कश्मीर व जम्मू राज्य पर पहला हमला कर दिया। २३ मई १९४८ को हरबख्श सिंह के नेतृत्व में भारतीय सेना की एक टुकड़ी ने टिथवल पर कब्जा कर लिया और हमलावरों को मार भगाया। इसके लिए हरबख्श सिंह को वीरचक्र का सम्मान मिला।

फौज में काम करते हुए अपनी वीरता, धीरता, और कार्य कुशलता के कारण आप निरन्तर उन्नति करते गये। सन् १९४८ में पश्चिमी कमान के डिप्टी कमाण्डेण्ट, १९४९ में पश्चिमी कमान के ब्रिगेडियर जनरल तथा सेना के मुख्यालय में पैदल सेना के निर्दे-

शक के पद पर काम करते रहे। १९६१ में पश्चिमी कमान के मुख्य सैन्य अधिकारी नियुक्त हुए। नवम्बर १९६४ में पश्चिमी कमान के जनरल अफसर कमांडिंग इन-चीफ के पद पर नियुक्त किये गये। पाकिस्तान ने जब १९६५ में भारत पर आक्रमण किया तो लद्दाख से लेकर राजस्थान तक सम्पूर्ण पश्चिमी सीमा की रक्षा का भार लेफ्टिनेण्ट जनरल हरबख्श सिंह के कन्धों पर ही था। उनकी व्यूह-रचना और मोर्चेबन्दी के कारण पाकिस्तान को हर मोर्चे पर हार खानी पड़ी। शलतांग और डड़ी कि लड़ाइयों में इन्होंने अद्भुद् वीरता का परिचय दिया। पाकिस्तानी हमले के समय सन् १९६५ में सम्पूर्ण पश्चिमी मोर्चे का निरीक्षण ओर निर्देशन जिस कुशलता से कर रहे थे उससे जवानों के हौसले बहुत बढ़ गये। इनकी वीरता से प्रसन्न होकर भारत सरकार ने पद्मभूषण की उपाधि दी। मौत को चुनौती देने वाले इस वीर की गाथायें भारतीय इतिहास के पृष्ठों पर स्वर्णाक्षरों में अंकित रहेंगी।

पैटन टैंकों का विध्वंसक अब्दुल हमीद

रणक्षेत्र में तोपें आग उगल रही थीं। हमलावर पाकिस्तानी सैनिक पैटन टैंकों और बख्तर बन्द गाड़ियों से घिरे हुए भारतीय सेना के जवानों पर दनादन गोले बरसा रहे थे किन्तु, इस मौत और जिन्दगी की लड़ाई में एक ऐसा भी जवान था जो रणचण्डी का खप्पर भरने के लिए आगे बढ़ता जा रहा था। उस ३२ वर्षीय युवक के हृदय में मातृभूमि के लिए मर मिटने की प्रबल आकांक्षा और लगन थी। देश की स्वतन्त्रता की रक्षा के लिए वह प्राण हथेली पर रख कर निकला था। कहावत है—सर बाँधे कफन शहीदों की टोली निकली। अभी उस युवक ने केवल बत्तीस ही वसन्त तो देखे थे किन्तु, इससे क्या? जो वीर होते हैं उनकी उम्र तो देखी नहीं जाती। जिसने अपना जीवन मातृभूमि के चरणों में न्योछावर कर दिया था उसके लिए तो बत्तीस वसन्त ही बहुत थे। उसके मुख से केवल यही शब्द निकल रहे थे, "आगे बढ़ो। शत्रु को

मारते जाओ। उसके टैंकों को तोड़ते जाओ। दुश्मन को ऐसा सबक सिखाओ जिससे वह दुबारा हमारी मातृ भूमि की ओर आँख उठा कर देखने की हिम्मत न कर सके।"



जानते हो यह युवक कौन था? यह युवक था भारत माँ के नयनों का तारा, भारतीय जनता का प्यारा, माँ का दुलारा और देश का सपूत —हवलदार अब्दुल हमीद!

अब हमारे बीच नहीं हैं किन्तु, उसकी वीरता और रण कुशलता की अमर गाथा युगों तक हमें प्रेरणा देती रहेगी। वह एक ऐसा निशानेबाज था जिसका निशाना कभी खाली नहीं गया। उसमें महाभारत कालीन वीर अर्जुन की तरह लक्ष्य वेध करने की क्षमता और अन्तिम दिल्ली सम्राट पृथ्वीराज चौहान की तरह शब्दवेधी निशाना मारने की योग्यता थी। पंजाब के कसूर क्षेत्र

में हवलदार अब्दुलहमीद ने पाकिस्तानी सैनिकों से लोहा लिया और बातकी बात में उसने हमलावरों के तीन पैटन टैंक चकनाचूर कर दिये। जिन पैटन टैंकों के लिए पाकिस्तान को ही नहीं बल्कि उसके अन्न-दाता अमेरिका को भी नाज था उन्हीं पैटन टैंकों को उस वीर ने अकेले ध्वस्त कर दिया। शत्रु की गोलियों की बौछार के मध्य वह आगे बढ़ता रहा और एक के बाद दूसरे तथा दूसरे के बाद तीसरे टैंकों को वह अपने हथगोले से ध्वस्त करता रहा, उसका शरीर गोलियों से बिंध कर छलनी हो गया, शरीर लहू-लुहान हो गया किन्तु उसके चेहरे पर शिकन नहीं आयी। आती भी कैसे ? उसका शरीर फौलाद का बना था और उसमें आत्मा थी वज्र की। जिस प्रकार बचपन में उसने रात्रि के घने अन्धकार को चीरते हुए केवल एक ही गोली से वृक्ष पर बैठे अशुभ स्वर करने वाले पक्षी को धराशायी कर दिया था उसी प्रकार उसने दुश्मनों के पैटन टैंकों को अपने हथगोले से धराशायी कर दिया। ऐसा था अचूक निशानेबाज, जवाँ-मर्द और दिलेर

अब्दुल हमीद। उसका निशाना कभी खाली नहीं गया। उसका लक्ष्य कभी विफल नहीं हुआ।

हवलदार अब्दुल हमीद का जन्म उत्तर प्रदेश के गाजीपुर जिले में १ जुलाई सन् १९३३ को हुआ था और सन् १९६५ में पाकिस्तानी हमलावरों से मातृ-भूमि की स्वतन्त्रता के लिए युद्ध करते हुए उसने वीर-गति प्राप्त की। सेना में वह कम्पनी क्वार्टर मास्टर हवलदार नंबर २६३९८८५ था किन्तु, देश के लिए शहीद होने वाले वीरों की सूचा में उसका नाम अव्वल था। हवलदार अब्दुल हमीद का जन्म एक साधारण परिवार में हुआ था किन्तु, अपने गाँव धामूपुर में वह बड़ा ही लोकप्रिय था। गाँव वाले आज भी उसे बड़े प्रेम के साथ स्मरण करते हैं। उन लोगों ने शहीद अब्दुल हमीद के परिवार को जीवन निर्वाह के लिए १० बीघा जमीन भी दी है। हवलदार अब्दुल हमीद ने भारतीय सेना में भर्ती होने के बाद सन् १९५७ से १९६० के मध्य जम्मू और कश्मीर मोर्चे पर तथा १९६२ में चीनी आक्रमण के समय उत्तर पूर्व सीमान्त

अंचल में भी अपनी रण कुशलता और वीरता का अद्-भुत परिचय दिया था। सन् १९६५ में पाकिस्तानी हमलावरों से उसने जो पैटन टैंक छीन लिया था वह भारतीय सेना के लिए उसका बहुमूल्य तोहफा है। बचपन से ही उसे कुश्ती लड़ने और शिकार खेलने का बड़ा शौक था। राष्ट्रपति ने मरणोपरान्त उन्हें 'परम वीर चक्र' देकर उनका सम्मान किया सम्पूर्ण देश अब्दुल हमीद के परिवार को अपना परिवार मानता है और उस परिवार का ऋणी है जिसने अब्दुल हमीद जैसे देशभक्त वीर पुत्र को जन्म दिया। कसूर के रण क्षेत्र में अब्दुल हमीद के कलेजे में जो गोली लगी उसके चलते उनका 'जीवन-दीप' बुझ गया किन्तु, इस शहीद ने अपनी मृत्यु के बाद जो दीप प्रज्ज्वलित किया उसकी लौ कभी बुझने नहीं पायेगी। स्वतन्त्र भारत के इतिहास में अमर शहीद अब्दुल हमीद का नाम स्वर्णाक्षरों में अंकित रहेगा।

—o—

महामानव जवाहरलाल नेहरू

स्वतन्त्र भारत के प्रथम प्रधान मंत्री और भारतीय जनता के हृदय सम्राट स्वर्गीय जवाहर लाल नेहरू ही एक ऐसे महामानव थे जिन्हें सारी दुनिया के बच्चे 'चाचा नेहरू' कह कर सम्बोधित करते थे। दुनिया के चाहे जिस किसी देश में वे गये वहीं बच्चों ने उन्हें अपना लिया। वे बच्चों के हो गये और बच्चे उनके हो गये। इतना ही नहीं, उनका जन्म-दिवस सम्पूर्ण विश्व में बच्चों के लिये 'बाल-दिवस' हो गया।

जवाहर लाल जी स्वर्गीय पण्डित मोतीलाल नेहरू के इकलौते बेटे थे। घर पर पढ़ाने के लिए यूरोपीयन शिक्षक रखे गये। मौलवी भी लगाये गये। जवाहरलाल जी जब १५ वर्ष के हुए तभी उन्हें माता-पिता के साथ अध्ययन के लिए लन्दन जाना पड़ा। १६०५ में उन्हें हैरो में दाखिल करा दिया गया। उनकी सन्पूर्ण शिक्षा-दीक्षा इॅगलड में हुई। कैम्ब्रिज विश्व विद्यालय से

बी० एस० सी० और एम० ए० की उपाधि प्राप्त की तथा बाद में बैरिस्टरी की परीक्षा में उत्तीर्ण होकर स्वदेश-वापिस आये। उन दिनों इँगलैंड जाकर अध्ययन करने का सुयोग बहुत कम भारतीयों को मिल पाता था



किन्तु, जवाहर लालजी को विलायत में उच्चतम शिक्षा प्राप्त करने का अवसर मिला। सन् १९१८ में जब बैरिस्टर बन कर स्वदेश लौटे तो एक ही वर्ष पश्चात् दिल्ली के एक सम्पन्न परिवार में कमला कौल के साथ

इनका विवाह सम्पन्न हो गया। श्रीमती कमला नेहरू से इन्हें केवल एक पुत्री प्राप्त हुई जिसका नाम इन्दिरा 'प्रियदर्शनी' रखा गया। आज वही इन्दिरा भारत की प्रधान मंत्री है। कमला नेहरू का स्वर्गवास हुए लम्बा समय व्यतीत हो गया।

जवाहर लाल जी १९१८ से १९२० के मध्य राष्ट्रीय आन्दोलन में शामिल हो गये और उनके कॉंग्रेस में शामिल होते ही सम्पूर्ण नेहरू परिवार राजनीति में खींच आया। स्वर्गीय पण्डित मोतीलाल नेहरू, माता स्वरूप रानी, पत्नी श्रीमती कमला नेहरू बहन श्रीमती विजया लक्ष्मी पण्डित तथा परिवार के अन्यान्य सदस्य राजनीतिक आन्दोलनों में सक्रिय भाग लेने लगे। स्वर्गीय मोती लाल जी तो कई अवसरों पर राष्ट्रीय महासभा कांग्रेस के अध्यक्ष भी निर्वाचित हुए तथा उन्होंने देशबन्धु चित्तरंजन दास के साथ स्वराज पार्टी की स्थापना की। जवाहर लाल जी भी अपने पिता की तरह ही कॉंग्रेस के अध्यक्ष निर्वाचित हुए।

प्रायः १७ वर्षों तक उन्हें अँग्रेज शासकों के कारा-

गार में रहना पड़ा किन्तु, १५ अगस्त १९४७ को जब देश स्वतन्त्र हुआ तो वे प्रधानमंत्री बनाये गये। लगभग ५० वर्षों तक उन्होंने इस देश की राजनीति का नेतृत्व किया। विश्व के प्राय: प्रत्येक देश की यात्रायें की। गुलाम देशों की स्वतन्त्रता के लिये लड़े और पीड़ित मानवता के पक्षधर रहे। साहित्य, संगीत, कला और विज्ञान से उन्हें विशेष प्रेम था। उन्होंने कई पुस्तकें लिखीं जिनमें मेरी कहानी, भारत की खोज, विश्व इतिहास की झलक और पिता के पत्र पुत्री के नाम विशेष उल्लेखनीय हैं।

उन्हें गुलाब के फूलों से प्रेम था और सदैव लाल फूल अपने बटन के छिद्र में लगाये रहते थे। विश्वशान्ति और मैत्री के बड़े हिमायती थे तथा युद्ध का विरोध किया करते थे। उनके नेतृत्व में देश ने बड़ी उन्नति की किन्तु २७ मई १९६४ को उनका देहावसान हो जाने से देश को गहरी क्षति पहुँची। देश ने एक महामानव को खो दिया।

शतरंज का प्यादा

(कहानी संग्रह)

❀

लेखक

एस. के. पटवा

❀

प्रकाशक

सजल प्रकाशन

बीकानेर

★ पुस्तकः— शतरंज का प्यादा

[स्वांधिकार लेखक के आधीन है]

★ लेखकः— एस. के. पटवा

★ प्रकाशन तिथिः— १५ अगस्त १९६२

★ प्रतियांः— एक हजार (प्रथमावृत्ति)

★ पुस्तक मूल्यः— एक रुपया पचास नये पैसे

★ प्रकाशकः— राजानन्द

★ मुख्य वितरकः— आलोक प्रकाशन, बीकानेर



सजल प्रकाशन

बीकानेर



SATRANJ KA PYADA-S.K. Patwa

समर्पण



माँ

तुम्हें

(और सुहृदय पाठकों को)

इस कहानी संग्रह में:—

इस कहानी संग्रह ने आप तक आने में इतने झटके सहे कि शायद (प्रगतिवादी भाषा मे) कोई शोषित मजदूर भी नहीं सहता है। जिस संग्रह को जल्दी आ जाना चाहिए था, वह अपनी किस्मत से संघर्ष करता हुआ एक हाथ से दूसरे हाथ में पड़ता चला गया लेकिन छप नहीं सका। इस बीच में बहुतों ने इसकी कहानियां भी पढ़ ली और आलोचना यूं की कि "बकवास है।"

मेरे पास उनकी इस आलोचना का एक उत्तर था "श्री पटवा की उम्र तो देखो, जीवन के अनुभव तो देखो और सरल-सपाट भाषा तो देखो तब ऐसे छींटे कसो।" किसी में 'बीज' हो वह अकुवाएं और कहा जाय मत दो पानी, मत दो खाद तो अन्याय ही होगा और तो क्या हो सकता है।

श्री पटवा में मुझे स्फुलिंग अवश्य मिला, आगे वह ज्वाला का रूप धारण करले, जलाये नहीं, पर प्रकाश बिखेरे तो शायद 'बकवास' सार्थक भी बन जायेगी किसी दिन—परिश्रम और लगन आवश्यक शर्त है। हर कहानी में यथार्थ भी है और आदर्श की ओर मोड़ भी, वह इस लिये कि यह उम्र कल्पना में और वह भी सुखद कल्पना मे अधिक विचरण करती है। कहानियां अच्छी लगेगी यह मेरा विश्वास है। भाषा की सरलता और कहानी की रोचकता के कारण बालकों को भी कहानियाँ भायेंगी।

राजानन्द

मेरी ओर से..............

मेरी कहानियों का प्रथम संग्रह कैसा लगा इस बारे में सुयोग्य पाठक-ही बता सकेंगे। मैं बस इतना ही कहूंगा कि उन्नीस वर्ष की इस अल्प आयु में मैंने जो कुछ देखा, अनुभव किया और पाया उसे अभिव्यक्त कर दिया। इन कहानियों में कल्पना कम है और यथार्थ अधिक। अपने अल्प अनुभव का यह संग्रह अनेक त्रुटियों से भरा होगा पर पाठकगण इस ओर कम ध्यान देकर इसे स्वीकार करेंगे ऐसी आशा है और उनकी यह स्वीकृति ही मुझे प्रोत्साहन देगी, आगे बढ़ायेगी।

संग्रह के एक रूप देने में जिन सज्जनों, साथियों व गुरुजनों का सहयोग मिला है उनका हार्दिक धन्यवाद करता हूँ, और...... उनका आभारी तो हूँ ही।

बस !

भविष्य में सहयोग की कामना के साथ

आपका

एस. के. पटवा

—लेखक

भीनासर (बीकानेर)

२२ जुलाई, १९६२

तालिका

कहानी	पृष्ठ

कहानी

शतरंज का प्यादा

ये शै ...... चलो, बचो। ये मारा ... ...। बस प्यादे की यह चाल, और यह पैदली मात।

सुधीर बाबू हमेशा की तरह आज भी शतरंज खेलने मे मसगूल थे और सुधा उन का इंतजार कर रही थी। उसने कई बार सुधीर को शतरंज न खेलने को कहा भी था, चूंकि खेलते-खेलते वह अपने साथियों के साथ रात को ग्यारह बजा देता और सुधा चौखट पर सिर टिकाये उसकी बाट देखती रहती। उसके कान सुधीर की सीढ़ियों पर चढ़ने की चाप सुनने को अधीर रहते .... शून्य में उसका दिमाग इधर उधर घूमता रहता, कभी-कभी वह अपनी बीती बातों को याद कर रोने लगती सुबक-सुबक कर।

वैसे सुधीर और सुधा का शादी से पहले भी अच्छा सम्पर्क रह चुका है। इन दोनों के पिताजी एक अच्छे चलते व्यापारियों मे गिने जाते हैं। सुधा और सुधीर एक ही जगह रहते थे। इनके पिताजी के बीच व्यापारिक रिश्ता होने के कारण सुधीर और सुधा मे काफी मेलजोल हो गया था।

बचपन में सुधीर बड़ा नटखट था– वह प्रायः सुधा के पिछे दौड़ता रहता और सुधा उसे ललचाती रहती। जब सुधा उसे एकान्त में मिल जाती तो वह उसे या तो पीटता या फिर बड़े प्यार से अपने अंक में भर कर प्यार की बातें किया करता। एक दिन आया कि सुधा और सुधीर दोनों बिछुड़ गये। सुधीर कलकत्ते चला गया। साल बीते कि सुधा सयानी हो गई। उसकी शादी की बातें चलने लगीं और सुधीर को उसके लिए उसके माँ-बाप ने चुन ही लिया।

सुधा की शादी हो गई। उसे यह मालूम नहीं था कि शादी होने के बाद भी वह अपने मन की इच्छा पूर्ण नहीं कर पाएगी। वह सोचती थी कनाट प्लेस में उनके साथ बांहें में बाहें डाल घूमने निकलूंगी और वे मुझसे हंस कर बातें करेगें, घर में मै रूठूंगी– वे मेरे जूड़े में बन्धी वेणी को सूंघने के लिए अपनी बाहों के घेरे मे ले लेगे,– मै गाऊंगी– वे तन्मय हो के सुनेंगे। लेकिन ऐसा कुछ नहीं हुआ।

सुधा को घर में शतरंज के प्यादे की तरह रहना पड़ा। उसकी सारी इच्छाएं मर गई– वह अन्दर ही अन्दर घुटने लगी। कभी-कभी वह अपने इस नीरस जीवन से खीझ जाती। " भी क्या जीवन की न इच्छाओं की पूर्ति न भावनाओं का आदर। वह सोचती की उसका जीवन मात्र शतरंज के प्यादे की तरह है, जिसको खिलाड़ी के हाथ अपने अनुसार चलाते है।

सुधीर अब भी शतरंज खेलता रहा— सुधा इन्तजार कर रही थी, और उसके सिर में जोरों का दर्द होरहा था। बाहर आसमान में घटायें और घनी होने लगी। शायद बूंदा बूंदी होगी। चांद को बादलों ने अपने काले आंचल में छिपा लिया कहीं उसकी उज्वल कोमल देह भीग न जाये। पर सुधा अब भीग रही थी— अपने आंसुओं में। उसका शरीर टूटने लगा।

इधर सुधीर अब भी शतरंज खेलता रहा। दो तीन बार नौकर ने आकर कह भी दिया मालिक बहुरानी का सिर दर्द कर रहा हैं, वह रो, रही है । मगर सुधीर खेलता रहा · खेलता रहा— । उस निर्जीव खेल के साथ इतनी दिलचस्पी दिखना सुधा को खटकने लगा। वह यह इरादा कर चुकी थी कि कल ही उस मनहूस शतरंज को तोड़ डालेगी जो उसके प्यार मे बाधक बनी हुई है।

उसे कृष्ण और गोपियों की बात याद आ रही थी। जिस प्रकार गोपियां कृष्ण की मुरली को अपने प्यार मे बाधक समझती थी, वैसे ही सुधा उस शतरंज को बाधक समझने लगी। वह यह सब अपने मन में सोच रही थी कि नौकर ने आकर कहा—"बहुरानी सर जर्द कर रहा है. लो चाय।" उसके हाथ और अधिक कांपने लगे. बेचारा बुढ़ा ही था; पर बड़ा नेक-दिल-इमानदार और स्वामीभक्त था। सुधाने नौकर के से शीघ्र ही प्लेट लेली। पर ढलकते हुए दो आंसू नौकर से छिपा नहीं सकी। वे उसके सामने ढुलक ही गये।

बूढ़े नौकर के हाथ कांप रहे थे । सुधाने कप ले लिया बोली— "जाओ रामू ! सोओ ।" उसने देखा, बूढे रामू की आंखों, में आंसू भरे हुए थे— वह उन्हें अगोंछे से पोंछता हुआ चला गया । बाहर पानी बरसने लगा था, सुधा की अशान्ति और विकलता बढ़ती जा रही थी ।

सुधीर अब भी नहीं आया था, घड़ी ने एक बजा दिये । बूंदे बन्द हो गई, चांद अपनी चांदी की सी रोशनी भीगी हुई धरा को लुटाने लगा । चांदनी की इस सरीता ने सुधा के अन्तस को झंकझोर दिया । वह पैड़ियों से नीचे उतर सुधीर के कमरे की ओर गई— सुधीर फाटक की तरफ पीठ किये कुर्सी पर बैठा उसी शतरंज की बाजी सजा रहा था ।

एक बार सुधा वापिस ऊपर लौटने लगी— फिर कुछ सोच कर, मुड़ी और खट-खट करती हुई सुधीर की शतरंज की मेज के पास खड़ी हो गई— सुधीर अकेले ही शतरंज खेल रहा था । सुधा ने तीखे स्वर में कहा "सोना नहीं है, एक बजने को आये हैं ।" सुधीर कुछ कहे उससे पहले सुधा बहुत कुछ कह गई ।

सुधीर ने कलाई पर बंधी घड़ी की तरफ नजर डाली और चौंक कर बोला अरे ! तुम्हारा सर दर्द कर रहा था न चलो मालिस करदूं, आज तो काफी देर हो गई । पता ही नहीं चला कि इतनी रात बीत गई । चलो ऊपर चलो । सुधीर ने सुधा का हाथ पकड़ लिया ।

सुधा ने ऊपर जाते-जाते कहा "आपकी तरफ से मैं मर जाऊं' तो क्या-आप तो शतरंज पर मोहरे सजाते रहिये— मुझ से आपको मतलब भी क्यों हो ?" कहते कहते सुधा ने सुधीर से हाथ छुड़ा लिया और रोने लगी फफक-फफक कर। वह जल्दी-जल्दी सीढ़ियों पर चढ़ने लगी।

'मेरी अच्छी सुधे सुनो तो ... इस तरह क्यों भागती हो। अब तो तुम हम एक हैं— जब दो थे तो भी इस तरह नहीं भागती थी और भागती भी थी तो मैं तुम्हें पकड़ भी तो लेता था, याद है।" कहते हुवे सुधीर सुधा के पास पहुँच गया और धीरे-धीरे सुधा के खुले काले बाल सहलाने लगा।

सुधीर को सुधा से काफी प्रेम था और सुधा इस बात को जानती थी लेकिन वह यही सोचती कि न मालूम वह इस शतरंज मे इतना दिल क्यों लगाते हैं। हमेशा बारह के करीब उठते और फिर कहते हैं "सुधा सर दर्द करने लगा।" और सुधा को बाम मलना पड़ता है कल तो सुधा बहुत डर गई थी, सुधीर नींद में भी कह रहा था, "ये किस्त ..... बचो .. बस मात।" सुधा ने देखा ये दिन दिन शतरंज की तरफ झुके जा रहे हैं। सुधा ने देखा मैं भी इस शतरंज के कारण इनके प्रति नीरस होती जा रही हूं। खेल कर देर से आते हैं और फौरन नींद आ जाती, एक घन्टे भी हंस कर बातें नहीं कर पाती।

दिन पर दिन गुजरते रहे—सुधीर के प्यादे बढ़ते रहे और अब तो वह दिन रात इसी शतरंज में खोया-खोया रहता है। सुधा से सहन न हो सका। वह किसी तरह उसकी इस बढ़ती आदत को कम करना चाहती थी। सुधा ने आज एक पत्र लिख कर उसके बिस्तर पर रख दिया और वह स्वयं सो गई।

आज भी सुधीर बारह के करीब आया था। उसने कमरे में जाकर बत्ती का बटन दबाया— कमरा चम-चमा उठा और उस चमकती रोशनी में सुधा का अंग अंग निखर उठा। सुधीर, सुधा के बिस्तर के पास गया और अपने बरफ से ठंडे हाथ सुधा के मुंह पर रख दिए। वह चमक उठी और उलाहने के रूप में कुछ कह कर फिर सो गई। सुधीर की आंखें भी भारी होने लगी। वह अपने बिस्तर पर सोने चला गया— लेकिन सो नहीं सका— उसने देखा कि एक पत्र पड़ा है। वह उसे उठा कर पढ़ने लगा। लिखा था :—

सोचती हूं आप दिन ब दिन शतरंज के मोहरों में खोये जा रहे हैं। क्या मैं आपका मनोरंजन नहीं कर सकती! क्या मैं इस लायक नहीं कि आप मुझ से कुछ समय हंस कर बात करें? मन में आता है कि उसे तोड़ डालूं, जला दूं—जो मेरे प्यार को छीनने का प्रयास करता है..... पर .... मैं तोड़ नहीं पाती हूं। सोचती हूं यह शतरंज भी कृष्ण की मुरली की तरह है— जो मेरे प्यार में बाधक है। रात के एक बजे तक

आपकी वाट जोहते रहती हूं, पर आपने कभी मेरे बारे में नहीं सोचा कि मै अकेली हूँ। कल ही उसे में आग में झों रही थी, मगर फिर ख्याल आया कि वह आपका दिन में मनोरंजन करती है, लेकिन फिर सोचा कि रात भी तो छीनती है। मै यह नहीं चाहती कि आप दिन में बोर होते रहें और किसी प्रकार का मनोरंजन न करें। लेकिन उस मनहूस, से इतना प्यार न करे तो कितना अच्छा रहे। हर वस्तु का उचित मिश्रण ही सुखदायक होता है। मगर आपने मेरी हर इच्छा को मजाक समझा है, शायद इसे भी मझाक समज कर रह जायेंगे। पर मैं .. मै . .. बराबर उससे जलती ही रहूंगी, और जिस दिन यह जलन सह नहीं पाऊंगी उस बेजान चैस को तोड़ कर जला दूंगी।

आप जैसे बुद्धिमानों को तो सोचना ही चाहिए कि आप निर्जीव को सजीव क्यों समझने लगे। क्या मै आपकी कुछ भी नहीं हूं ? मेरा आप पर कोई अधिकार नहीं है ?

सोचिये . .. । निर्णय आपके हाथ है। आप सही न्याय करें या गलत, मै अपनी इच्छाओं पर कुल्हाड़ी मार चुकी। आपका गलत न्याय भी मुझे मान्य होगा, यही मेरा आखिरी दाव है। जीत या हार तकदीर के हाथ है।

'सुधा'

सुधीर ने दो तीन बार पढ़ा और फिर पढते पढते नींद आ गई। वह नींद में ही सोचने लगा मेरा शतरंज की

तरफ बहुत आकर्षित होना उचित नहीं है। उसके होंट मुस्कराते की कोशीश कर रहे थे।

इधर सुधा स्वपन देख रही थी कि अब वे बहुत कम शतरंज खेलते हैं।

अब सुधीर शतरंज खेलता है पर अपनी सुधा के साथ ही। और सुधा सोचती है कि वह गर ष्यादा भी है, तो अब बहुत खुश-बहुत खुश।





माँ की तड़फ

वैसे तो वह (पाँच पुत्रों के पिता) अपनी पत्नी के लिये काफी धन छोड़ गये थे, लेकिन वह इतना ही था कि तीन पुत्र और एक पुत्री का पोषण ही हो सका। जो कुछ भी नकद और बैंक मे उसके पति ने छोड़ा था वह अब समाप्त हो चुका था। पिता के मरने के समय श्याम जो सबसे बड़ा था, करीबन १६ साल का होगा; बाकी छोटे थे और सबसे छोटा लड़का केवल ११ माह का ही था। बड़ी लड़की की शादी हो चुकी थी।

श्याम के पिताजी की अचानक मृत्यु श्याम को कई दिन के लिए पागल कर गई। न मालूम उस तरुण ने अपने मन मे क्या क्या आशाएं पाल रखी थी, मगर वे आशाए भी उसके पिता के साथ चली गई। उसे इस उम्र अपने कमजोर कन्धों पर घर का सारा भार, तीन भाई बहनों का पढ़ाना लिखाना स्वीकार करना पड़ा।

श्याम ने अपनी माँ से कहा "मां पिताजी यदि कुछ दिन संसार में और रहते, मेरी यह उम्र उन्हें बिल्कुल याद नहीं रही। मां पिताजी चल.........।"

वह आगे कुछ कहना चाहता था मगर उसके पहले ही उसका कण्ठ भर आया। वह बोलने के बजाय रोने लगा। मां तड़फ रही थी और श्याम उसका दुःख और अधिक बढ़ा रहा था। उसे बार बार पिताजी की याद आ रही थी।

श्याम ने फिर अपनी मां से कहा "मां अब मुझे पढ़ाई छोड़ कर कहीं नौकरी ढूंढनी पड़ेगी, नहीं तो घर का .।" मां की तड़फ और बढ़ी मगर उस मां के सीने में हिम्मत थी वह अपने बेटे को जैसे तैसे पढ़ाना ही चाहती थी।

मां ने कहा—"बेटा वे चल बसे मगर मैं तो जिन्दी हूं।"

उसने फिर कहा "मेरे पास जितने रुपये हैं उससे तुम भली प्रकार एम० ए० कर सकोगे और फिर तुम अपने छोटे भाईयों को पढ़ा भी सकते हो।"

श्याम ने कहा "मां पांच साल तक मेरा खर्च, वीरेन्द्र, सतीश और लीला का खर्च कैसे वहन करोगी।" मैं कल ही से नौकरी ढूंढने की कोशिश करूंगा मां, पढाई छोड़ दूंगा, कल से कॉलेज नहीं जाऊंगा।

मां के जी को ठेस लगी—उसने रोते हुए कहा "बेटा तेरे पिताजी गये हैं, लेकिन मां मौजूद है, क्या उसका यह कर्त्तव्य नहीं कि वह अपने लड़के को पढाये, क्या वह अपनी आंखों से यह देखना नहीं चाहती कि उसका बेटा एक बड़ा ऑफिसर बने।"

मां ने श्याम को कालेज नहीं छोड़ने दिया और पां

साल तक अपने पति का इकट्ठा किया पैसा जो उसके वृद्धावस्था में सहायक होता, लगा दिया और अब बहुत कम पैसा बच रहा, जो श्याम की शादी मे समाप्त हो गया।

श्याम ने एम. ए. किया और एक लेफ्टीनेन्ट के ओहदे को सम्भालने का सरकार ने उसे मौका दिया। श्याम प्रायः बाहर रहता और महीने में एक या दो बार ही अपने घर आता। वह घर के बारे मे बहुत कम जानता था।

एक दिन श्याम की बहू ने कहा "आप तो महीने में एक या दो बार ही आ पाते हैं, मै यहां इनके पास नहीं रहना चाहती।" लेकिन श्याम ने उसे साफ कह दिया कि "जब तक मां है, मां के पास रहना होगा, चाहे मै एक बार ही क्यों न आऊं।"

सविता मजबूर थी, वह अब नया उपाय ढूंढने लगी। अब वह लीला से श्याम के छोटे भाई वीरेन्द्र और सतीश से हर समय चिढी हुई रहती, उनसे कम बोलती और अपने कमरे में ही प्रायः रहती। हर बात के लिए वह उन्हें फटकार देती। यहां तक कि एक दो बार उसने मां को भी कुछ कह दिया।

मां बहू की बातें देख सुन कर तड़फ उठती थी। उसे फिर अपने दिन याद आ जाते और श्याम के वे शब्द फिर गूंज उठते उस शान्त वातावरण में।

सविता हमेशा श्याम को कहती रही कि, "आप मुझे

अपने पास रखिये, मेरा यहां मन नहीं लगता।" वह लीला वीरेन्द्र सतीश और यहां तक कि मां के खिलाफ भी श्याम को भड़काती रही। आखिर श्याम से भी नहीं रहा गया उसने लीला की शादी के बाद मां से दूर रहने का ही निश्चय किया। वह मां की तड़फ को नहीं जान सका और चला गया—मां को दो बच्चों के बीच छोड़ कर।

मां की तड़फ और बढ़ी उसने हर एक को कहा "ए औलाद वालों घोंट दो ऐसी औलादों का गला जो तुम्हारी औलाद नहीं अपनी बीवी की गुलाम हो।" मां के पास अब केवल मात्र एक सहारा था, बचे हुवे सोने के आभूषण। मां की तड़फ दिन ब दिन बढ़ रही थी वह कंकाल मात्र ही रह पाई थी। उसने फिर भी यह नहीं सोचा कि श्याम की तरह वीरेन्द्र भी कर सकता है, छोड़ दूं उसे भी और कह दूं कि जैसी इच्छा हो करो। उसने अपने आभूषण बेच डाले और बीरेन्द्र को पढाया, सतीश भी पढने लगा। वीरेन्द्र ने कहा "मां भैया को चिट्ठी दूंगा कि वे मुझे पढायें।" मगर मां ने कहा "बेटा इस मां के होते तुम ऐसे भैया की सहायता के लिए क्यों इच्छा करते हो।" वह मन ही मन कह रही थी, मुझे एक पैसा भी नहीं चाहिए उसका।

वीरेन्द्र ने भी एम. ए. किया वह भी किसी कालेज में प्रोफेसर नियुक्त हुआ। मां ने उसके सामने शादी का प्रस्ताव र

मगर वीरेन्द्र ने साफ कह दिया "माँ मैं तेरी सेवा करना चाहता हूँ। मुझे शादी नहीं करनी है, जब तक तुम रहोगी मैं शादी नहीं करूंगा।"

वीरेन्द्र को एक प्रकार का भय था कि शादी के बाद में अपनी मां की पूर्ण सेवा नहीं कर सकूंगा। उसने सतीश को खूब पढ़ाया और इस काबिल किया कि सरकार को उसे एक जिले का जिलाधीश बनाना पड़ा।

सतीश भी शादी के प्रस्ताव को तब तक रद्ध करता रहा जब तक वीरेन्द्र उसे कुछ आज्ञा नहीं दे देता। लेकिन वह यह भी नहीं चाहता था कि वीरेन्द्र की आज्ञा पाते ही शादी करे मगर वह उस समय के इन्तजार में था कि वह फिर किसी को भाभी कहे और उसकी भाभी ही उसे शादी के लिए बाध्य करे।

मगर सतीश की यह इच्छा केवल मात्र मन का हवाई किला था। वीरेन्द्र ने तो यह प्रतिज्ञा कर रखी थी कि वह अपनी मां की सेवा ही करता रहेगा, शादी नहीं करेगा। मगर सतीश की इच्छा तो भगवान को भी तो मंजूर थी।

उधर सविता भी श्याम की तरफ से कुछ उदास ही रहती कारण वह फिर भी अकेली ही रहती थी, श्याम हर समय उसे अपने पास नहीं रख पाता। सविता को हर समय अपने पास रखना श्याम के लिए बाधादायक था।

अब सविता को फिर माँ की याद आने लगी। वह अब और अधिक अकेली नहीं रहना चाहती थी। उसने अब श्याम को फिर कहना शुरू किया कि वे मां के पास चलें। मगर श्याम जो उस प्रकार माँ को दुत्कार कर आया था, कैसे चला जावे। उसे शर्म लग रही थी और वह सविता पर खीझ उठता था।

इधर अब मां ने वीरेन्द्र को हर बार यही कहा 'बेटा शादी करलो, अपने जीवन को इतना नीरस मत बनाओ।"

माँ अपने बेटे का कांटा नहीं बनना चाहती थी मगर वीरेन्द्र इसे हर बार अस्वीकृत ही करता रहा।

एक बार वीरेन्द्र कालेज से आ रहा था और कुछ थका हुआ लग रहा था। वह साइकिल को कुछ इस प्रकार चला रहा था जैसे कोई शराबी चलाता हो। वास्तव में उसकी थकान बहुत बढ़ गई थी। अचानक एक मोटर के एक्सीडेंट से वह इस कदर घायल हो गया कि बचने की भी उम्मीद नहीं रही। डाक्टरों ने जवाब दे दिया। माँ की तड़फ वीरेन्द्र की मौत से और अधिक बढ गई।

अब मां पागलों की तरह बार २ बकती रहती "वीरेन्द्र बेटा वीरेन्द्र मैं प्यासी····" और वह रो उठती। वह शून्य में वीरेन्द्र की मूर्ति को देखती, निहारती और कहती "बेटा तुम श्याम से मत कहना कि मां·· बिमार··।" वह जोर जोर से कुढती और चिल्लाती, मैं नहीं देखना चाहती उसका मुंह।"

एक दिन सतीश का एक मात्र सहारा उसकी प्यारी मां चल बसी वह रोया, फूट फूट कर रोया। उसने कहा "मां की तड़फने बहुत बुरी होती है, उसे मत तड़फने दो ‥ ‥।

अब श्याम भी बेचैन था। उसकी आंखें खुल गई थी, लेकिन अब मां चल बसी थी, अब मां के दर्शन दुर्लभ ही नहीं असम्भव थे।

श्याम फिर अपने पुराने घर में आया। वह घर उसे अब खाये जा रहा था और उस दिन रात के एकान्त में जोर जोर से मां की तस्वीर के सामने चिल्ला चिल्ला कर कह रहा था "मां ‥‥ मां मां, मेरे दोष माफ करदो मैं अधम हूँ, नीच हूँ लेकिन माफ करदो मां।"

और मा का चेहरा तस्वीर मे शान्त, निश्छल और तेज पूर्ण था। आंखें जैसे कह रही हों "अब भी अपनी जिम्मेदारी सम्हालो।"



दो मित्र

"अरे चन्दन" ओ चन्दन ! "हां पिताजी", कहते हु चन्दन बाहर आया तो देखा वहां पर उसका दोस्त खड़ा है और वही आवाज लगा रहा है। चन्दन और वीरेन्द्र दोनों कालेज में पढते थे। चन्दन, वीरेन्द्र को देखते ही शरमासा गया और वीरेन्द्र ने हास्य से कहा "आओ मेरे बेटे।"

चन्दन सेभी नही रहा गया और उसनै ने भी कहा "वा मेरे पापा, कल था दोस्त और आज हो पापा" वे दोनों इसी अकार हंसी खुशी की बातें कर रहे थे कि इतने में चन्दन के पिताजी आ गये और उनके सत्कार के लिए उन्हें खड़ा होना पड़ा, साथ ही उनकी दिल्लगी की बातें भी बन्द हो गई।

चन्दन के पिताजी ने कहा "वीरेन्द्र, आज हम चन्दन के लिए एक लड़की देख कर आये हैं और कल तुम तथा चन्दन भी देख आना।" यह कर चन्दन के पिताजी तो चले गये मगर अब चन्दन बिलकुल गंभीर हो गया। उसने सोचा अब इस मनहूस से पीछा कैसे छुड़ाया जाय।

विरेन्द्र ने देखा कि चन्दन कुछ सोच रहा है और उसने फौरन कहा "वाह अभी से यह हालत" खुदा बचाये इस खूबसूरत जादू से जिसका नाम सुनकर अच्छे भलों की यह हालत हो जाती है।

कहने का सिलसिला जारी था। उसने फौरन कहा कि यदि यह हालत रही तो मै कल ही तुम्हारे पिताजी से कह दूंगा कि पिताजी अभी नही, अभी एम. एस. सी. मे एक साल और बाकी है।

चन्दन ने जबाब दिया " अरे यार तुम भी कैसे घन-चक्कर हो, अच्छा खासा मूड़ खराब कर देते हो। खैर छोडो इस बात को, चलो सिनेमा चलेंगे बहुत बढ़िया पिक्चर लगी है।"

वीरेन्द्र ने कहा "पर ··· तो तुम्हे आज मोरारजी बनना पडेगा।" रास्ता बातों ही बातों मे कट गया। इतने लम्बे रास्ते मे चन्दन ने वीरेन्द्र को उस पिक्चर की कहानी का सारांश सुनादिया जिसे उसने किसी पत्रिका में पढ़ा था।

दूसरे दिन सुबह वीरेन्द्र तैयार होकर आ गया और बात करने लगा चन्दन के पिताजी से। थोडी देर बाद चन्दन भी नीचे आ गया और दोनों कार में बैठ कर चल दिये लड़की को देखने।

लड़की का नाम कुसुम था और वह भी बी. ए. कर चुकी थी। वीरेन्द्र और कुसुम कभी एक ही कालेज मे शिक्षा पाते थे

और एक दिन वीरेन्द्र की कला से मुग्ध होकर कुसुम ने अपने प्यार को वीरेन्द्र पर वार दिया था, पर यह राज अभी राज ही था। दो के बीच का खुला राज।

वे दोनों कार से उतरे और एक मकान में घुसने ही जा रहे थे कि वीरेन्द्र ने कहीं से कुसुम को देख लिया और वह अन्दर जाने के बजाय सीधे पांव बाहर आ गया और जल्दी-जल्दी सड़क पर चलने लगा। चन्दन यह रहस्य नहीं समझ सका। उसने वीरेन्द्र को ढूंढा फिर सीधा वीरेन्द्र के यहां आया मगर वीरेन्द्र नहीं मिला।

एक दो दिन बाद ज्ञात हुआ कि वीरेन्द्र कॉलेज खुलने से पहले ही पिलानी चला गया है। चन्दन के यह सब समझ में नहीं आया और उसने पिताजी की बात भी टाल दी कि अभी वह शादी नहीं करेगा।

अब चन्दन अपने कमरे में बैठा परेशान हो रहा था कि उसे क्या करना चाहिए। वह वीरेन्द्र को पत्र लिखे कि उसने ऐसा क्यों किया। "नहीं वह मेरे से मिल कर नहीं गया था। मैं उसे पत्र नहीं दूंगा" चन्दन का दिल बैठा जा रहा था, वह कुछ भी समझ नहीं पा रहा था।

इतने में पोस्टमैन ने आकर आवाज लगाई, "चन्दन बाबु। चिट्ठी।" चन्दन का ध्यान टूट गया उसने समझा वीरेन्द्र की होगी। मगर चिट्ठी किसी अनजान की थी। वह ऊपर जाकर चिट्ठी पढने लगा।

श्री चन्दनबाबु,

सादर नमस्कार।

मैं एकान्त जीवन व्यतीत कर सकती हूं लेकिन वीरेन्द्र के अलावा अन्य किसी को स्वीकार नहीं कर सकूंगी। आशा है आप मेरी मदद करेंगे।

कुसुम

उसके साथ एक पत्र-वीरेन्द्र का भी था जो कुसुम ने उस पत्र के साथ भेज दिया था। उसमें लिखा था '...

कुसुम जी,

नमस्कार! चन्दन मेरा दोस्त है। आप मुझे भूल जाएं और चन्दन के साथ सुखी जीवन की कल्पना करें।

आपका

विरेन्द्र

चन्दन ने एक निश्वास छोड़ी। वीरेन्द्र के उस दिन अचानक चले जाने का कारण अब उसके सामने स्पष्ट हुआ था। 'मै कुसुम को कैसे स्वीकार कर सकता हूँ? वीरेन्द्र ने मुझे पत्र क्यो नहीं दिया?" उसने निश्चय कर लिया कि वह कल ही पिताजी से, कुसुम से शादी न करने को कह देगा। वह अपने दोस्त का दुश्मन नहीं बनना चाहता था।

शाम को चन्दन कुसुम के यहां गया। वहां उन्होंने काफी देर तक बात चीत की। अन्त मे यह निश्चय किया कि कुसुम

वीरेन्द्र को कभी नहीं त्याग सकेगी और कल ही वीरेन्द्र को पत्र देगी।

कुसुम ने काफी पत्र दिए मगर एक का भी जवाब नहीं आया। उसका दिल कमजोर हो रहा था, वह दिन-दिन सूख रही रही थी, मगर वीरेन्द्र न मालूम क्यों पत्र भी नहीं दे रहा था। इस बार छुट्टियों में भी वीरेन्द्र नहीं आया, उसने कुसुम को, चन्दन को एक भी पत्र नहीं दिया।

इधर वीरेन्द्र भी कम दुखी नहीं था, वह यह सोच रहा था कि क्या मैं दोस्त के लिए इतना भी नहीं कर सकूंगा। उसने यह निश्चय किया था कि वह जीवन पर्यंत अविवाहित रहेगा, यदि उसका दोस्त सुखी जीवन व्यतीत कर सके। उसने सोचा कि वह चन्दन को पत्र लिखे, पर वह घबरा रहा था। कलम चलता और चल कर रुक जाता था। उसने यह निश्चय किया कि चन्दन की शादी से पहले वह अजमेर नहीं लौटेगा।

वीरेन्द्र वहां पर ही प्रोफेसर बन गया और घर पर पत्र दे दिया कि वह अभी नहीं आ सकेगा। वह कुसुम को भूलने की कोशिश कर रहा था।

चन्दन ने अपने पिताजी से कह दिया कि वह कुसुम से शादी नहीं करेगा। कुसुम ने भी अपने मां-बाप से कह दिया कि उसके लिए किसी लड़के की तालाश न करें। वह स्वयं एक लड़के को खोज चुकी है यदि मिल सका तो ठीक नहीं तो अविवाहित रहेगी।

चन्दन ने यह निश्चय किया कि वह जब तक शादी नहीं र लेगा वीरेन्द्र को पत्र नहीं देगा। कुछ समय बाद चन्दन की ादी किसी अन्य लड़की से होनी तय हो गई। उसने अब ोरेन्द्र को पत्र दिया।

प्रिय वीरेन्द्र।

इतने बुझ दिल मत बनों। किसी को अपना सहारा देकर एक दम इस प्रकार अलग हो जाना क्या समझदारी ? तेरी कुसुम हमेशा तेरी रहेगी, चन्दन की तो वह भाभी ही हेगी। अब तक तेरी अमानत को सम्भाले रहा, अब स्वयं आकर सम्भालो।

मेरी शादी आज से पन्द्रह दिन बाद कान्ता से निश्चित ुई है। आशा है अवश्य आओगे!

तुम्हारा

चन्दन

मगर अब वीरेन्द्र भी पिलानी से रुड़की चला गया था। उसका स्थानान्तर हो गया था। उसने रुड़की जाने के बाद अब तक अपने घर भी पत्र नहीं दिया था। उसे चन्दन का पत्र नहीं मिल पाया।

आज चन्दन का आशा का दीप बुझना रहा था। उसकी शादी और वीरेन्द्र आया तक नहीं। कुसुम भी बहुत दुखी थी,



मासूम बच्चे

उस दिन रामू के पिताजी का जब देहान्त हुआ तो रामू कुल ग्यारह माह का ही तो था। वैसे तो रामू के एक बड़ा भाई था मगर जब रामू १२ वर्ष की आयु का हुआ ईश्वर ने रामू के सर से उनका भी हाथ हटा लिया और वह असहाय हो गया। रामू की मां बड़ी समझदार थी मगर वह प्रायः बिमार रहती थी। उससे स्वयं कोई कार्य नहीं होता था।

अब रामू उस बिमार मां का बोझ बन गया था, जो स्वयं अपनी जिन्दगी के लिए एक बोझ बनी हुई थी।

रामू की मां ने कहा "रामू अब मैं तुझे पढ़ा नहीं सकूंगी, अब खाने का प्रबन्ध भी नही हो पायगा—बेटा। तुम्हें मजदूरी करनी होगी।"

रामू ने कहा "पर मां ·······?"

मां ने बात काटते हुए कहा "अब हमारे पास कुछ भी नहीं है, मैं मजबूर हूं—बेटा।"

रामू बड़ा होनहार था। उसने पढ़ने के लिए मां से बहुत आग्रह किया, लेकिन मां क्या करती ? उसके पास इतना पैसा उच्च शिक्षा के लिए कहां से आता। उसने दूरके एक भैया को पत्र दिया, मगर जवाब कहां, अनाथ का दिल बैठ गया! उसे प्यार नहीं मिल रहा था। एक कडुवी घूंट इसी उम्र में पीने को मिली। वह होनहार था, हारा नहीं था। उसने फिर प्रयत्न किए। सफलता मिल ही तो गई।

वह हंसता हुआ आया और माँ को पुकारा "माँ...... माँ ने देखा इस बच्चे के मुंह पर हंसी कैसे ? इसे प्रेम की घूंट किसने दी है।

मां ने रोते हुए कहा "बेटा आज खुशी कैसे, क्या भैया की......।"

रामू ने भी रोते हुए कहा "मां, मां, मुझे चन्दु काका ने पढने की आज्ञा दी है। उन्होंने मेरा और तुम्हारा भार अपने कन्धों पर लिया है—मां।" भगवान उन्हें बनाये रखे, यह रामू का मन कह रहा था। "अब मैं भी पढकर एक अच्छा पैसे वाला बनूंगा, मेरी अच्छी मां। और .. और मैं भी चन्दूकाका की तरह अनेक मासूम बच्चों को पढाने का भार अपने पर लूंगा—मां।"

मां ने रोते हुए रामू को अपने कलेजे से लगा लिया।

वे दोनों खूब सुबक-सुबक कर रोये। मां ने कहा बेटा "काश आज वे होते।"

"अरे ये क्या, तुम लोग इस प्रकार से रो रहे हो, लो ये लो १००) रु०।" वे दोनों डर गये, देखा चन्दूकाका सौ का नोट लिए खड़े हैं। "और हां, कल ही स्कूल में दाखिल हो जाना और फीस जमा करा देना।" चन्दूकाका ने रामू की मां को नोट देते हुए कहा और चले गये।

उस दिन रामू बड़ा खुश नजर आ रहा था। वह अपने दोस्तों से कहने लगा "अब मैं भी कल से स्कूल चलूंगा तुम्हारा लीडर बनूंगा, खूब पढ़ूंगा, प्रथम रहूंगा।" और उस मासूम बच्चे का दिल नाच रहा था। वह फिर घर आया उसने देखा मां अभी तक वहीं बैठी है-सौ का नोट लिए और निहार रही है उसी नोट को। मां ने फिर कहा "काश! आज वे होते।"

रामू ने मां के पास जाकर कहा "मां ये क्या...।" उसे खुशी जो हो रही थी। उसने फिर कहा "मां चन्दूकाका ने कहा है कल तेरे लिए एक अच्छा सूट लाऊंगा। मैं पहनुंगा उसे .. मां।" मां का ध्यान टूट गया, मां ने कहा..."मेरा लाल बड़ा होगा, पैसा कमायेगा और वह भी मासूम बच्चों का भार अपने पर लेगा।" रामू ने कहा "हां—मां, मैं तेरी इच्छा अवश्य पूरी करूंगा।"

रामू की मां काम में लग गई। अब से वह हमेशा स्वस्थ रही और कभी भी बिमार नहीं हुई। रामू स्कूल में दाखिल हुआ।

तीन साल बाद हाई स्कूल परीक्षा में यूनिवर्सीटी से प्रथम रहा। रामू को पारितोपिक मिले, सरकार ने स्कालरशिप प्रदान की। और यह वर्षों बाद की बात है। उस दिन रामू की मां खुश थी। उसने फिर कहा "मेरे लाल ' काश वे होते।" अब रामू भी समझदार हो गया था। उसने कहा "हां मां, मैंने पिताजी को देखा ही नही··· काश! वे होते।" रामू की मां की आंखें कितने ही दिन बाद फिर छल छला आई। वे दोनों सुबक सुबक कर रो पडे।

'अरे रामू ····।' चन्दूकाका ने बाहर से आवाज दी। "आया चाचाजी" कहते हुए रामू आंखें पोंछ कर दौड पड़ा। चन्दूकाका के हाथ में घड़ी, पेन का सेट और दो अच्छे रेडीमेड सूट देख कर रामू ने कहा "ये क्या लाये चाचाजी।" चन्दुकाका ने कहा "मेरे अच्छे रामू ये तेरे उपहार हैं।"

रामू ने कहा "चाचाजी आपकी बदौलत ही मैं यहां तक पहुंच सका हूं, नहीं तो कभी भी क्या मांलूम बच्चे ' ।"

चन्दूकाका ने बात काटते हुए कहा "अच्छा चल-अन्दर चल भाभी के पास" अन्दर आकर चन्दूकाका ने कहा "भाभी

मेरा अच्छा रामू आज यूनिवर्सीटी में प्रथम आया है।" और हां "अरे रामू—आज ही शाम को एक पार्टी देनी है, अध्यापकों को निमंत्रण भेज दिये गये हैं।" रामू ने कहा "कौनसी पार्टी चाचाजी।"

चन्दूकाका ने रामू को हलका सा थप्पड़ मारते हुए कहा "तू प्रथम जो रहा है" उन्होंने ने कहा "हां, आज शाम को ये सूट तथा घड़ी पहन कर तैयार रहना।" और फिर चन्दूकाका चले गये। चन्दूकाका की इस अपार खुशी ने रामू की मां को बोलने का भी मौका नहीं दिया। उनको पता भी नहीं चला की चन्दूकाका कब चले गये।

रामू की खुशी का पारावार नहीं था। रामू की मां की भी खुशी का ठिकाना नहीं था। वह बार-बार बेटे का भाल चूम लेती थी···प्यार से।

उसने फर्स्ट क्लास एम. ए. कर लिया। कालान्तरः रामू सरकार व चन्दूकाका की बदौलत विदेशी शिक्षा पाने विदेश जाने की तैयारी में था। मां ने कहा "रामू आज तूं मेरे से दूर जा रहा है, मैं कैसे रह सकूंगी, और वह रो पड़ी।" रामू ने कहा "मां, तेरा बेटा मासूम बच्चों के भरन पोषण का प्रशिक्षण लेने जा रहा है, और वह शीघ्र ही लौट पड़ेगा।"

छः साल बाद रामू फिर स्वदेश आया। चन्दूकाका

उछल रहे थे। रामू की मां के खुशी का ठिकाना नहीं था। उसने कहा "मासूम बच्चा, मासूम बच्चों का प्रशिक्षण लेकर आया है।"

कल का रामू आज डा० राम था। वह सबसे गले मिल रहा था। लोग उसकी तारीफ कर रहे थे—पर रामू का मान कह रहा था काश! देश के हर मासूम बच्चों को उचित प्यार मिलता और वे सभी डा० राम हो सकते।"

डा० राम ने कहा "चाचाजी आपने मुझे जीवन दिया है।" राम के बड़े भाई रामू से कतरा रहे थे और डा० राम अब भी उनके प्यार के लिए तरस रहा था। रामू ने फिर कहा "मै मासूम बच्चा हूँ, मुझे उचित प्यार मिलने से आज यहां तक पहुंच पाया हूँ"

डा० राम की शादी एक ऐसी लड़की से हुई जिसके मां बाप नहीं थे। जिसे उचित प्यार नहीं मिला था। राम से शादी होने के पश्चात् उसने बी. ए. की और राम ने कहा "मां आज मैं भी मासूम बच्चों का प्यार अपने पर लेकर सार्थक हुआ हूँ।"

डा० राम ने स्वदेश आकर एक बच्चों की संस्था खोली। उसका नाम "मासूम बच्चों की संख्या" रखा।

अब डा० राम पुनः विदेश जा रहे थे किसी विदेशी युनीवर्सिटी ने उन्हें सम्मानित करने के लिए बुलाया था। चन्दुकाका और मां की आंखें गीली थी। लीला भी पल्लु से

आंसुओं को सुखाने की कोशिश कर रही थी।

विदेश में डा० राम को उपाधियों से सम्मानित किया गया। अखबारों में चित्र छपे—मां, लीला, चन्दु काका के हर्ष का बांध टूट गया। पर……पर, उनकी खुशी परमात्मा को बर्दाश्त नहीं हो सकी।

आते समय डा० राम का प्लेन दुर्घटनाग्रस्त हो गया। सारे घर में हाहाकार हो उठा। सरकार के दुख भरे सान्त्वना के सन्देश उसकी मां के पास पहुंचे। पर—क्या वे सब उसके दुःख को जरा भी कम कर सके ?

सात साल बाद !

डा० राम की मां आज "मासूम बच्चों की संस्था" की छात्र संसद का उद्घाटन करने जा रही थी। शहर के नामी प्रख्यात लोग सभी आमंत्रित थे। लीला भी मां के बूढ़े शरीर को सहारा दे रही थी।

उद्घाटन हुआ। तालियों की गड़ गड़ाहट हुई। मां की बुढ्ढी आंखों में भी खुशी नाच रही थी। बच्चों के मासूम चेहरे हर्ष से प्रफुलित हो उठे। नारे लग रहे थे—इन्कलाब जिन्दाबाद, मासूम संस्था जिन्दाबाद, डा० राम की जय हो, डा० राम अमर है, डा० राम जिन्दाबाद।

और मां की हर्ष से पानी भरी आखों में "रामू" की मूर्ति कापी ...... और वे लड़खड़ा कर कुर्सी की तरफ गिरने लगी। लीला ने उठ कर सहारा दिया। लोगों ने देखा मां घूढी आंखों मे पानी की धार सी बह रही थी।



पे (PAY) नहीं मिली

ओह । आज तनख्वाह मिलेगी, मैं अवश्य ही आज आफिस जाऊंगा दिवाली जो आ रही है । यह सब सोचते हुवे डा० सुरेन्द्र एम:ए:पी:एच:डी: अपने आफिस गये और सिधे कुर्सी पर बैठ कर घन्टी लगाई .... टन ...... टनन, अरे कोई है........... ।।,

कोई जवाब न आने पर डा० की नजर सीधी कलाई पर बन्धी घड़ी की तरफ गई । ओह् ! तो मै आज इतनी जल्दी आफिस आ गया हूँ, जमादार के सिवाय और कोई भी नहीं है, । अरे अब वह भी चला गया दीखता है, तो मुझे ही उठ कर पानी पीना पड़ेगा । कण्ठ सुखे जा रहे है !"

डा० सुरेन्द्र एक अच्छे खासे पढ़े व्यक्तियों में तो थे ही पर एक अच्छे और जिम्मेदार ओहदे पर भी थे। आपके आफिस के सभी कर्मचारी आपको बहुत अधिक चाहते थे । वैसे डा० सुरेन्द्र की कहानी इस प्रकार है ।

डा० सुरेन्द्र एक बहुत ही उच्च कुल में पैदा हुए थे ।

डा० साहब को शुरू से ही शिक्षा के प्रति काफी रूची थी। डा० साहब कॉलेज की शिक्षा में पदार्पण करने जा रहे थे। डा० साहब जब बी: ए: में थे तो उन्होने एक लड़की को चुना था शादी के लिए। वह लड़की डा० के साथ ही बी: ए: में पढ़ रही थी और उसने बी: ए: करके कॉलेज छोड़ दिया था।

इन छः सालों में डा० का काफी मेल जोल बढ़ गया था और वह लड़की भी डा० को यह विश्वास दिला चुकी थी कि उसकी शादी डा० सुरेन्द्र के सिवाय और किसी दूसरे से नही हो सकेगी।

हॉ, शादी जो होनी थी हो गई और डा० सुरेन्द्र आज उसी शीला के साथ सुख से जीवन व्यतीत कर रहे थे। लेकिन उनका सुखी जीवन, स्वच्छ प्रेम सायद भगवान को मंजूर न था, और कुचक्र भी तो किसी को पूछ कर नहीं आता। शादी के कुछ दिन तक तो शीला व डा० की खूब पटी, पर————।"

अब डा० सुरेन्द्र अकेले थे। उनका छोटा भाई श्याम किसी देहात में अपनी मौसी के यहां शिक्षा पाता था।

आज डा० साहब जल्दी आगये थे और सोचने लगे वे पिछली बातें। उन्होने अपने मन में सोचा, काश उसे झूठा भ्रम नहीं होता। डा० सुरेन्द्र उस दिन अपनी कुर्सी पर बैठे सुबक-सुबक कर रो रहे थे। दोष उनका स्वंय का था। वे स्वंय हमेशा शीला को यही कहते आज तो, पे (PAY) नहीं मिली है। पन्द्रह पन्द्रह दिन तक यह कह देना शीला को जंचा नहीं उसे

कुछ भ्रम पैदा होने लगा । अबला जो थी, वह डरने लगी कि उसका प्रेम कोई और छीन रहा होगा । इसी कारण वह उदास मन रहती और डा० की पूर्ण सेवा नहीं कर पाती थी।

इधर जब डा० साहब को लगा कि शीला मेरे प्रति दि य दिन निरश होती जा रही है तो उन्हें भी भ्रम पैदा हुआ मगर उन्होंने शीला से इस बारे में बिल्कुल नहीं पुछा और उल्टे देर से घर आना, कभी भी शीला से न बोलना और क्लब में ही मस्त हो कर शराब पीना और अपने को भुलाना शुरु कर दिया ।

शीला का भ्रम दिन प्रति दिन अधिक बढ़ रहा था। इस महीने की पे (**Pay** अभी तक डा० ने शीला के हाथ में नहीं रखी थी । शीला के शरीर में मानो एक कांटा लग गया था जो उसके शरीर को सोल रहा था और उसका उपचार डा० सुरेन्द्र के सिवाय किसी के हाथ में नहीं था लेकिन उन्हें क्या पता था वह स्वंय ही शीला को दुख देने वाला कांटा बने हुए है।

आज शीला ने यह निश्चय किया था कि वे आयेंगे तो उनसे वह अवश्य बोलेगी । दो बात करेगी और पूछेगी उनकी नाराजगी का कारण । शीला घुटी जा रही थी। वह अब ककाल मात्र रह गई थी । लगता था जैसे किसी विज्ञान शाला में मानव अस्थि पंजर लटकाया हुआ हो । लेकिन डा० का भ्रम फिर भी बना रहा, उन्होंने आज दो माह हो गये शीला को देखा तक नहीं था ।

एक दिन शीला ने कह ही दिया.आप शाराब तो नहीं——।" शब्द पूरा भी नहीं कर पाई थी कि डा० ने कहा इस वक्त आप अपने कमरे में जाइये, मुझे कुछ काम है ।" शीला सहमी सी बिना कुछ बोले सीधी अपने कमरे में चली गई। वह आंचल में मुंह छुपा कर रोने लगी। पर उसका रोना कौन सुनता भगवान के सिवाय, और तभी तो भगवान ने उसे पहले बीमार डाला और फिर उसे इस पृथ्वी से उठा लिया। यह थी डा० साहब की कहानी।

ये सब बाते आज डा० के खाली दिमाग मे चित्र की भांति उभर रही थी और वे अब तीन साल बाद फिर शीला के प्रेम के लिए तड़फ उठे थे । डा० मानो स्वप्न देख रहे थे और उन्हे पता भी नहीं चला था कि सारे कर्मचारी अपने काम मे लग गये हैं और उनकी आंखों से अभी तक आंसु बह रहे हैं।

कल ही डा० को किसी ने ऐसा ही कहा था कि उसकी औरत भी इस प्रकार पे (Pay) देर से देने मे घुटी जा रही थी। कारण उसे भ्रम हो गया कि उसका उज्जवल प्रेम कोई और छीन रहा होगा, मगर ज्योंही मुझे मालूम हुवा, मैं हर चौथी तारीख को पूरी पे (Pay)अपनी श्रीमतीजी के हाथ में रख देता हूँ तो वह नाच उठती है।

डा० उनकी बात सुन कर यह समझ गये थे कि शीला का काल वह स्वंय थे, उसने शीला की इच्छाओं की तरफ कभी भी ध्यान नहीं दिया और यह समझने पर ही आज डा० को

तीन साल बाद फिर शीला की याद आ रही थी। वे अपने प
क्रुद्ध हो रहे थे, बार बार खीझ उठते थे।

डा० साहब हमेशा अपने कर्मचारियों को समय पर तन
ख्वाह दे देते थे। कारण वे नहीं चाहते थे कि कोई और भी
उन्ही की तरह अपनी किसी शीला को खो बैठे। मगर आज
महीने की पन्द्रहवी तारीख़ व्यतीत हो रही थी और पे Pay
अभी तक नदारद।

कर्मचारी आते और कहते साहब कल .... दि......वा
......ली,......और डा० मुंह नीचा किए कुछ बोल नहीं पा
थे। वे नहीं चाहते थे कि किसी को भी अपनी तरह बननेदे पर
......पर आज वे मजबूर थे। इसीलिए तो वे जल्दी आये थे
कि आज पे (Pay) मिलेगी पर ....।

उनके सामने फिर शीला का चेहरा आया और कहने लगी
"काश। मैं यह नहीं कहता कि पे नहीं मिली।"

अब शीला डा० साहब के सामने प्रेरक बन बन कर आ
रही थी, मानो वह कह रही हो, "किसी को मत कहो कि आज
पे नहीं मिलेगी।" उन्होंने फिर प्रयत्न किए कि आज पे मिले।
क के मैनेजर को टेलीफोन भी किया.. ... ..।

पर.........पर मैनेजर नहीं था, चपरासी बोल रहा था।
ने कहा "जैसे भी हो वह आज हर हालत में पे दिलवा-
।"

उन्होंने दो तीन बार टेलीफोन किया मगर एक का भी

जवाब नहीं वे हताश हो गये ....   ऊब रहे थे। फिर भी कह रहें थे, आज मैं अपने समस्त कर्मचारियों को पे दिलवाके रहूंगा और कर्मचारी अचम्भे में खडे देख रहे थे उनका नाटक, मानो कह रहे हैं डा० साहब आप पागल तो नहीं .....।

मगर डा० उसे केवल नाटक नहीं समझते थे। उन्हें यह भली प्रकार मालूम था कि समय पर पे न मिलने से क्या होता हैं !

अभी-अभी कुछ दिन की बात है, उन्ही के पड़ोस मे एक गरीब भूखा मर कर चल बसा था । उसका बड़ा लड़का कहीं बाहर नोकरी कर रहा था मगर आज उसे तीन साल हो गये एक पैसा भी नही भेजता था। उसके पास जो कुछ भी था उससे उसने अपनी जीन्दगी के तीन साल पूरे किए और कल चल बसा ।

डा० बार बार यही कहे जा रहे थे कि मैं आज अवश्य पे दिलाऊंगा। अवश्य दिलाऊंगा, दि . . . ला .... ऊं ... गा. तुम मत जाओ।

मगर अब समस्त कर्मचारी चले गये थे । डा० और उनका चपरासी दो ही रहे पाये थे। डा० मजबूर थे पे नहीं दिला पाये। उन्होंने बहुत कोशिश की. कि आज पे मिले पर उनका वश भी तो नहीं चल पा रहा था।

आज दफतर के कर्मचारी न जाने क्या सोच कर घर से

दफ्तर गये थे और क्या लेकर वापिस जा रहे है। आज उनके पैर चलना नहीं चाहते थे, मानों जवाब दे दिया हो।.

हालत कुछ ऐसी ही थी, डेढ माह हो चुका था पे को मिले। आज की चून भी कइयों के यहां नहीं थी। सुरेश बाबु की तो आज हालत बहुत ही खराब थी। घर से निकलते ही उनकी श्रीमती ने कहा था "आज शाम की चून भी नहीं है, आटा लेकर ही घर में घुसना—मैं बच्चों को भूखा नही मार सकती।

आज सुरेश बाबु का मन कह रहा था, छोड़ दूं ऐसी नौकरी को, और आज से ही भैया की दूकान का हिस्सेदार बन जाऊं। मगर ..... "मगर आज के आटे का इन्तजाम ? घरवाली इन्तजार करती होगी, बच्चे भूखे रो रहे होंगे और मैं आज All India Commercial Institute का आफिस सुपरिन्टेण्डेन्ट घरवाली का निर्देश, बच्चों की तड़फ, सभी कुछ कैसे पूरा होगा ? आज की शाम भी कैसे व्यतीत होगी।

इसी तरह आज सभी की हालत थी और डा० सुरेन्द्र शाम को घर पर जोरों से प्रलाप कर रहे थे—"मै अब अवश्य ही समय पर पे लाऊंगा शीला, ...शीला, एक बार बोलो मेरी शीला ... लो, ये लो इस माह की पे ... बोलो ... बोलो.... डा० पागल की तरह कर रहा था, कुछ सोच रहा था और उनकी आवाज जोर जोर से बोल रही थी।

घन्टी बजाने के लिये उन्होंने हाथ बढ़ाया, पर रोक लिया, घड़ी में देखा अभी साढ़े नौही बजे थे। वह जल्दी आगये थे सुना भी था पे मिलेगी, वे दूसरे काम करने वालों को पे बटवाएंगे और अगर आज भी न मिली तो ······ तो डाक्टर आगे कुछ नहीं सोच सके।





सम्भ्रान्त व्यक्ति

जो कुछ भी हो मुझे दुनिया का डर नहीं । मैं अवश्य नई शादी करूंगा ।

अजन्ता टेक्सटाइल मील के होने वाले डाइरेक्टर मि० सतीश यही सब अपने दिल में वीचार रहे थे डाइरेक्टर सतीश ने पहले भारत में एक भारतीय महिला से शादी कर रखी थी। भारतीय महिला में वो सब बातें कम पाई जाती हैं जो किसी योरूपियन नारी में होती है ।

सतीश भारत में बेचलर ऑफ इन्जीनियर की परीक्षा पास करके इंग्लेण्ड में उद्योग धंधो के बारे में प्रशिक्षण लेने गये थे । छः साल तक वहीं पर रहे। वैसे प्रशिक्षण के पीछे एक खास पहलू छिपा था, और वह था नई शादी। वे अपनी पहली स्त्री को इसलिए पसन्द नहीं करते थे कि वह उनके साथ कभी क्लब नहीं जा सकी, व्हिस्की के पेग जमाकर नाच गा नहीं सकी।

और अब तो आप होने वाले मील डाइरेक्टर हैं जिनका ३,०००) रु. मासिक वेतन होगा, उनके लिए तो फिर ऐसी नारी

ही चाहिए जो क्लब से उनके साथ आ जा सके। कार में बैठ कर भ्रमण कर सके और ब्रिज के पत्ते उलट सके। क्योंकि संभ्रान्त व्यक्तियों में ऐसा ही होता है।

ऐमीली जोन्सन से सतीश प्रेम करते थे। वहां के लोगों को यह पक्का विश्वास हो गया था कि ऐमीली और सतीश की किसी भी दिन शादी हो सकती है। सतीश अपने को वहां अविवाहित बताते थे। क्योंकि वह नई-शादी करना चाहते थे।

दोनों के बीच कोर्ट मैरिज होना तय हुआ। मजिस्ट्रेट के सामने सतीश कह रहा था कि मैं अविवाहित हूं। मेरी भारत में शादी नहीं हुई है।

शादी होते हुए भी अविवाहित बता कर छलना कितना आता है—सभ्रान्त व्यक्तियों को।

शादी होने के बाद ऐमीली व सतीश भारत आये। मील की तरफ से एक बंगले में ठहराये गये। अपनी पहली स्त्री की तरफ डाइरेक्टर सतीश ने कोई ध्यान नहीं दिया। सभ्रान्त व्यक्तियों का फूहड़ नारी की ओर जो दूसरों की बाजूओं से न खेल सके-ध्यान देना अशोभनीय है। और उन्हों ने मात्र ५०) रु० माहवार पर उसे दूर गांव में निवास-हेतु भेज दिया। सभ्रान्त व्यक्तियों का यही तो उसूल है।

वे दोनों नित्य क्लब जाते।

क्लब में ऐमीली कहीं तथा डाइरेक्टर सतीश कहीं सुरा

व सुन्दरी का आनन्द पान करते पाये जाते। ये व्यक्ति भी हैं जो अपने को सम्भ्रान्त बता कर इतना कुछ कर जाते हैं और फिर भी कहते हैं—सम्भ्रान्त हैं। लेकिन डाइरेक्टर सतीश सम्भ्रान्त हैं और उनके जितने क्लब फ्रेंड हैं सब सम्भ्रान्त हैं।

एक दिन की बात है डाइरेक्टर अपनी कोई गर्ल फ्रेंड को सी-ऑफ करके क्लब जा रहे थे। उनके साथ उनका प्रिय दोस्त अरविन्द भी था। अरविन्द ने "कहा मिस्टर सतीश, मै तो एक डिलेमा में पड़ा हुआ हूं। डर है कहीं वह मिस्ट्री खुल गई तो......।

सतीश ने पूछा "क्या बात है? किलियर और फ्रेंकली बताओ तो पता चले।" उसने कहा—"तुम मेरे घर पर चलो वहीं तुम्हें बताऊंगा।" उन्होंने गाड़ी को सिविल लाइन्स की तरफ मोड़ दी। थोड़ी सी दूर पर अरविन्द अचानक गाड़ी रोक लेता है और नीचे उतरकर जरा बाहर घूमने लग जाते हैं।

वे दोनों एक महिला को देखते है। सतीश कहता है—यह कौन है।

अरविन्द ने कहा यही तो समस्या है, बड़ी खूब सूरत है, देखे कैसे नाक नक्स हैं जैसे गढ कर बनाये हों।

वे फिर गाड़ी में बैठ कर रवाना हो गये घर पहुँच कर अरविन्द ने कहा, अच्छा तो सुनलो मेरी समस्या।

उसने कहा वह लड़की मेरे आफिस में स्टेनो है।

दिन मै आफिस जल्दी चला गया था। वह आई हुई थी। मैंने कुछ डिक्टेशन लिख वाया। उस दिन तो कुछ भी नहीं हुआ।

इसके बाद दो तीन दिन तक वह बिमार रही। छुट्टि आने पर मै एक दिन कार लेकर गया। उस दिन वह स्वस्थ थी। मैं उसको बराबर देखता रहा। वह शरमा गई। फिर······फिर मैंने उसे अपने बाजुओं मे कश लिया और फिर······ यह सब कैसे क्या हुआ, मै बिल्कुल बता नहीं सकता। मै स्वयं भी कुछ नहीं समझ पाया।

वैसे मैं उसे प्यार करता हूँ और वह मुझे। लेकिन फिर भी वैसा होना तो खतरनाक ही है सतीश।

सतीश ने गम्भीरता पूर्वक कहा—"यह तो बड़ा ही उलझा हुआ केस है। लेकिन उसे अभी शीघ्र ही तुम्हे डाक्टर को दिखवाकर ऑपरेशन करवा देना चाहिए, कुछ भी पता नहीं चलेगा।"

अरविन्द ने कहा लेकिन मैं तो उसे प्यार करता हूं और चाहता हूं शादी भी करलूं। वह लड़की योरूपीयन है, सतीश। बड़ी ही चपल और सुन्दर है।

सतीश ने पूछा "यह कैसे हो सकता है? यह तो बड़ा ही जटिल काम है। मगर दुनियां में इससे भी जटिल काम सुलझाने वाले मौजूद हैं, अरविन्द—घबराओ नहीं।"

तुम्हें एक कार्य करना होगा अरविन्द।

ऐमीली इसी वर्ष दो माह पश्चात टूर पर जा रही है। वह क्लब की तरफ से बेडमिन्टन में सलेक्ट हुई है। वह तथा एक अन्य युवक बाहर कहीं मैच खेलने जा रहे है। तुम अपनी मिसेज को उनके साथ भेज दो। और फिर तुम्हारा कार्य बन सकता है।

अरविन्द ने कहा लेकिन टूर पर जाने वाले कितने दिन रुक सकते है। यह तो जीवन भर का सवाल है।

ओह! समझे नहीं, तुम उन्हे दो तीन साल तक वहीं के इधर उधर सैर कराते रहना और यहां आने के लिए बराबर मनाही लिखते रहना, साथ में यह भी लिखते रहना कि पर्यटन से स्वास्थ्य लाभ होता है, अतः कुछ साल पर्यटन करती रहो।

लेकिन फिर भी ..!

फिर भी क्या? मै जानता हूँ तुम उसकी चपलता पर ही चपल हुए हो, उसके रूप पर ही फिदा हुए हो। तीन साल बाद न यह रूप रहेगा न ऐसी चपलता और फिर तुम्हारी ऐसी उमंग भी नहीं रहेगी।

लेकिन सतीश, चाहे कुछ भी न रहे। मगर शादी के बाद एक अंग्रेज लेडी को छोड़ा कैसे जाय, वह क्लेम भी तो कर सकती है।

अरे यार! तुम समझदार हो, जब तुम्हारी चाह पूरी

जाय तो तुम उससे ज़रा सा झगड़ा करना वह फौरन तुम्हारे से अलग हो जाएगी। अंग्रेज लेडीज अपना अपमान सहन नहीं कर सकती और इसी कारण वह तुम्हें छोड सकती है।

अभी तुम उसे आफिस छुड़वा दो। कह्दो तुम्हें अब नौकरी करने की जरूरत नहीं। फिर दो माह पश्चात जब तुम्हारी मिसेज चली जाय, कश्मीर की घाटियों में ह्नी मून मनाने चले जाना।

और फिर उसके बाद तुम्हारी पहली स्त्री जिन्दा बाद।

देखा कैसा हल निकाला है।

हां। हां, सभ्रान्त व्यक्ति ऐसा ही करते है। तभी तो सभ्रान्त कहलाते है।



विद्रोह

"तुम्हें यह मालूम है रजनी मैं इस बार छुट्टियों में घर नहीं जा रहा हूँ। मेरे दिल में तुम्हारा जो स्थान है - वह छुपा हुआ नहीं है - रजनी, तुम्हें भी छुट्टियों में यहीं रहना होगा।" लेकिन रजनी के पिताजी की चिट्ठी आई थी कि वह छुट्टियां घर पर ही बिताए।

रजनी के पिताजी जोधपुर के कलेक्टर थे और रमेश के पिताजी थे एक शहर के नामी सेठ जिनकी शहर में इज्जत थी, लोग अदब से सलाम किया करते थे, उन्हें सुबह शाम। रमेश और उसके माता पिता की इच्छाओं में काफी भिन्नता थी। वह चाहता था आजकल की-सी स्वतन्त्रता और उसके माता-पिता चाहते थे, कुछ और। इसी कारण रमेश का अपने घर के प्रति कोई आकर्षण नहीं था। वह अपने मां बाप से शिक्षा का बहाना लेकर ही अजमेर आया।

अजमेर में रमेश रजनी को पाकर बहुत खुश हुआ था।

उसको सहारे की आवश्यकता थी, प्यार पाने को भूख थी। अभी रमेश रजनी को छुट्टियां यहीं बिताने के बारे में आग्रह कर रहा था कि मेस के बेरे ने आकर दो काफी और टोस्ट सामने रख दिए। पल भर के लिए शान्ति छा गई।

रजनी ने कहा "रमेश पिताजी की चिट्ठी आई है, मुझे जाना ही होगा। मैं विवश हूं लेकिन मेरी भी छुट्टियां कैसे बीतेंगी रमेश।" रमेश की पुतली जम गई, वह भीगी-भीगी सी मालूम पड़ रही थी। उसने रजनी को अपने अंक में भर लिया गन्ध महक-सी आ रही थी उसकी देह में—उसने कहा "मैं भी कैसे रह सकूंगा रजनी।" रजनी की आंखों में भी आंसू थे उसने कहा "लेकिन तुम्हें भी तो अपने घर जाना चाहिए रमेश।"

रमेश ने कहा "मैं किसके पास जाऊं, पिताजी कहते हैं तुम आवारा की तरह क्यों रहते हो, उन्होंने मुझे पागल समझा है रजनी।" उसके कण्ठ बिल्कुल भर गये—वह एक बार फिर रजनी के आंचल में मुंह छुपा कर रोना चाहता था कि चपरासी ने आकर कहा "मेम साहब तांगा आ गया है—गाड़ी का समय हो रहा है, चलना चाहिए।

रजनी को छोड़ने रमेश स्टेशन आया, वहां पर उसने रजनी से कई वायदे किए। रजनी ने शीघ्र ही वापिस आने को कहा। रमेश ने रजनी को यह भी कहा कि "रजनी एक दिन हम दोनों एक हो सकेंगे।" लेकिन फिर भी उसे भय था अपने पिताजी

को वे ऐसा नहीं होने देंगे, उसे भली प्रकार मालूम था। इतने में गाड़ी ने सीटी दी और गाड़ी भक-भक करती-दो दिलों को चीरती हुई चल पड़ी। रमेश काफी देर तक प्लेट फार्म पर खड़ा रहा फिर अनमना सा हॉस्टल आ गया। शरीर में कोई तीव्र पीड़ा थी—जैसे लग रहा था।

अभी रजनी को गये कुछ ही दिन हुए थे कि रमेश के पिताजी का तार आया "कम इमिडियेटली'। वह अपने पिता की आज्ञा कैसे टाल सकता था, उसे जाना ही पड़ा। उसे रजनी की रह-रह कर याद आ रही थी। वह बार-बार सोच रहा था कि दो साथियों का बिछोह भी कितनी देर तक कष्ट देता रहता है। रमेश ने सोचा तो था कि शायद पिताजी या मां की तबीयत खराब होगी या छोटी बहिन शीला सुसराल से आई होगी-अतः उससे मिलना है!

लेकिन ····· लेकिन वहां तो कुछ और ही था, मकान चमक रहा था शहनाई बज रही थी, दो चार अतिरिक्त नौकर और रख लिए गये थे। रमेश ने कार से निचे उतर कर पिताजी को प्रणाम किया। पिताजी ने फौरन कहा "वाह शादी से केवल तीन दिन पहले, तार कब मिला था।" रमेश चौंका, उसने कहा किसकी शादी पिताजी।"

रमेश के पिताजी ने कहा "बेटा, आज से तीसरे रोज तेरी शादी है।" रमेश ये शब्द सुनना नहीं चाहता था। उसने

कहा "लेकिन पिताजी मै अभी शादी नही करना चाहता।" रमेश को रजनी के सामने किए वादे याद आने लगे। उसे वह दिन भी याद आ गया जब रजनी जोधपुर जाने की तैयारी कर रही थी और उसकी आंखों में आंसु थे। रजनी को उसने अपने अंक में भर लिया था।

रमेश ने पिताजी से बहुत कहा सुनी की, उसने कुछ डरावनी धमकियां भी दी, पर आखिर में उसके पिताजी की तड़फ ने उसे मजबूर कर दिया और रमेश को बांध दिया वचनों में। उसकी भावनाएं कुचली जा रही थी, उसका जीवन लुट रहा था और लुट रहा था उसका स्वप्न। पिताजी ने अपनी ही इच्छाओं को बेटे की इच्छाएं समझी और एक अनजान लड़की के साथ उसे बांधने का निश्चय कर लिया।

रमेश विवश था, वह अपने पिता के वचनोंमें बन्ध चुका था, उसे अपने पिता का अपमान सहन नही हो सकता था। उसने रजनी को पत्र लिखा:—

रजनी,

चाहता तो हूं मुंह भर कालिख लगा लूं, फंदा पहन लूं और चला जांऊ इस दुनिया से जिसमें मेरा कोई मान नही। मेरी अपनी इच्छाएं नहीं और मेरा अपना जीवन नही।

कोई मेरे वायदे झूठे समझे, इसको लिखते मुझे बहुत ही लज्जा आ रही है, सोचता हूं लिखने से पहले ही इस दुनियां

से क्यों न उठ जाऊं ? मैं अपने पिता की आज्ञा का उल्लंघन नहीं कर सकता—असमर्थ हूं। मेरा और तुम्हारा बिछोह शायद मुझे इस दुनिया में न रहने दे। ईश्वर तुम्हे सुखी करे।

रमेश।

रमेश की इच्छाओं पर प्रतिघात हो रहा था। वह एक अनजान लड़की के साथ बंध रहा था, जिसे उसने कभी देखा नहीं कि वह कैसी है, जिसके स्वभाव से वह परिचित नहीं। रमेश दूल्हे के भेष मे जा रहा था—आगे शहनाई गूंज रही थी। रमेश के मन में बार-बार रजनी का मुंह सामने आ जाता था, वह उसका बिछोह सहन नही कर सकेगा यह उसका दिल कह रहा था।

आज सुहाग रात थी— सुनीता मखमली सेज जिस पर दुधिया सी चद्दर बिछी हुई थी-बैठी थी, जैसे कोई तकिया खड़ा किया हुवा हो। महल चारों और से पुष्प मालाओं से सजा हुआ था, सेज पर एक भीनी भीनी—मीठी सी सुगन्ध आ रही थी। सुनीता सिमट रही थी अपने में, दुल्हन के भेष में लजा सी रही थी। उस सफेद प्रकाश में उसका अंग—अंग निखर उठा था। उस रेशमी—तारों—सी झिलमिलाती—मोतीयों की चुनरी के अन्दर वह सिमटी हुई सी बडी सुन्दर लग रही थी। वे श्यामल बाल, वह गोरी सी देह, तीखी सी नाक, बडी बड़ी आंखे जिनके पलकों से काले डोरे, वे सुन्दर नक्स वह चांद सा मुखड़ा और

पतले पतले होंट जिन पर हल्की सी मुस्कुराहट का साम्राज्य था बड़े सुन्दर ल ा रहे थे । रमेश आया, उस मोतियों की चुनरी में छिपी हुई चांद सी देह को देख कर एक सिहरन पैदा हुई उसकी देह में । वह जो कुछ सोच रहा था बिल्कुल नहीं था ।

रमेश ने होले से घूंघट को उपर किया, एक हंसमुख चेहरा नाच रहा था उस आवरण में । वह मुस्कुराई और रमेश के पैरों में गिरना चाहती थी-शायद पैर छूने खड़ी हुई हो । रमेश ने देखा कितने सुन्दर दांत हैं-सीप से लग रहे हैं । वह सुनीता की बांहो में बांहे डाल कर खड़ा कर रहा था कि मुंह से एक शब्द सहसा रजनी निकल पड़ा ।

सुनीता सहमी और रमेश के हाथों से छूटते हुये चमक कर कहा "यह रजनी कौन है ।" अभी रमेश ने अपने हाथों में सुनीता की मांग भी नहीं भरी थी की सुनीता गरज गरज कर रमेश से बोल रही थी और रमेश कह रहा था "रजनी मेरी कोई नहीं होती, सुनीता तुम ऐसा क्यों कर ही हो, तुम्हे मुझ पर भी शक हो रहा है ।" लेकिन सुनीता जैसे काले सांपिन की तरह रमेश को घूर रही थी-आखों के डोरे ल ल हो गये थे । वह कमरा छोड कर चली गई थी ।

रमेश को रात भर नींद नही आई-उसे रह रह कर रजनी की याद आ रही थी और याद आ रहे थे वे वायदे-उसे वह भूल भी कैसे सकता-सुनीता ने तो पहली रात ही रमेश का अपमान

किया था······ प्यार के बजाय एक कड़वी घूंट मिली थी उसे। रमेश आहत हो गया वह सुनीता को बिल्कुल नहीं देखना चाहता था।

रमेश के पिताजी ने रमेश को व्यापार सम्भालने को कहा मगर वह साफ इन्कार कर गया। एक दिन भाग गया और किसी दूसरी यूनिवर्सीटी में दाखिल हो गया किसी तरह अपने दो साल का खर्च उसने चलाया और एम. ए. कर लिया फिर वह वहीं नौकरी करने लगा।

सुनीता की हालत बहुत खराब थी वह केवल मात्र हड्डियों का ढांचा रह गई थी। उसे टी: बी: हो गई थी। इन दिनों वह बहुत बीमार थी। बचने की भी उम्मीद नहीं थी कि रमेश की याद उसे अब फिर आने लगी. अब वह पछता रही थी।

अभी अभी चपरासी ने आकर रमेश को एक तार दिया है। "साब एक तार आया है–आपका और" वह तार रमेश के हाथ में देकर बाहर चला गया। तार को पढते ही रमेश को अपनी जिम्मेदारियां फिर याद आने लगी। उसने सुनीता की मांग भी नहीं भरी थी। तार में लिखा था। "सुनीता बहुत बीमार है–बचने की सी आशा नहीं है।"

रमेश शाम होते–होते घर पंहुचता है। देखता है वह सुन्दर मुखड़ा आज डाल की सी तरह सूखा लग रहा है। आंखें धंस गई थी, गाल हड्डियों से चिपक गये थे और बाल अस्त

व्यस्त पड़े थे । वह पूछता है "सुनीता तुम कैसी हो ?"

सुनीता उत्तर देती है "रमेश में व्याही हुई भी क्वांरी हू । मेरी मांग अपने हाथों से भरदो नहीं तो क्वारी मर जाऊंगी ।" "रमेश सुनीता की खाट पर होता है । विजली चली जाती है । वे दोंनो सो जाते हैं । वाहर वादलों की ओट में चांद अपना मुह रह रह के दिखा रहा था-शायद वह भी चकोर का विछोह सहन नहीं कर पा रहा हो । वादल घडघड़ाते है बूंदे गिरती है । सुनीता की जिन्दगी में नई सांस आती हैं ।

अभी सुबह की साढे सात बजी होगी-रमेश चाय पीकर लॉन मे घूम रहा था कि रमेश का छोटा भाई आकर कहता है "भैया"............ भाभी...... ... वह आगे बोल नहीं पाता है । रमेश दौड़ते हुवे बोलता है "सुनीता तबीयत ... ...।" तभी सुनीता बोल उठती है "रमेश तुम अब रजनी से शादी कर लेना, मेरी यही इच्छा है, वह तुम्हारा विछोह कैसे सहन करती होगी । अब मै जा रही हू रमेश, तुम रजनी से शादी.......।"

जिस प्रकार सुबह होते ही पक्षी उड़ जाते है उसी प्रकार सुबह होते ही सुनीता के प्राण पंखेरू उड गये, मगर रह गया एक दर्द-एक टीस और मर गई रमेश के विछोह भरे क्षणो मे । उसकी अन्तिम इच्छा अब रमेश को पूरी करनी होगी नहीं तो उसकी मृत आत्मा को शान्ति नहीं मिल पायेगी । लेकिन वह अब रजनी के सामने कैसे जायेगा- क्या वह अभी कंवारी होगी ? लेकिन

हां, वह कुंवारी ही होगी मुझे जाना होगा—यह सुनीता की अन्तिम इच्छा थी। यह रमेश का मन कह रहा था' . ...।

अभी रजनी अपने पिताजी से कह रही थी कि वह जीवन पर्यन्त अविवाहित रहेगी ' ··· ' मगर उसी समय रमेश आ पहुंचा। रमेश को देख कर रजनी आश्चर्य में पड़ गई, मुह से निकला—"आप।" फिर वह सम्हल गई और पूछने लगी सुनीता कैसी है। रमेश ने सिर झुका कर अपराधी के स्वर में कहा "रजनी मृत आत्मा को शान्ति देने के लिए प्रेम की भीख लेने आया हूं मरते समय उसकी अन्तिम इच्छा थी कि मैं तुमसे शादी··· ।" रमेश की आंखे भर आई। रजनी सब कुछ समझ गई उसके भी आंसू बहर निकल गये फिर कहा "तुम मेरा विछोह कैसे सहन कर पाये रमेश, "उसने फिर पूछा "अपने शरीर को इस प्रकार कैसे नष्ट किया तुमने।" वह रोने लगी थी सुबक सुबक कर। वह कह रही थी "अब कभी मत बिछुड़ना रमेश।"

रमेश ने आंसू भरी आंखों को पोंछते हुये कहा "अब भी मुझे अपना लो रजनी।" और रजनी रमेश को अनुराग भरी आंखो से देख रही थी जैसे कह रही हो मैं तो पहले से ही तुम्हे अपना चुकी।"





एक दिन हम एक होंगे

शंकर अभी कॉलिज से नहीं आया था। उसका हमेशा कालेज से देर से आना शंकर के घर वालों को खलने लगा। लेकिन फिर भी वे किसी एक स्थाई कारण को नहीं पकड़ पाये थे। उनके माथे पर चिन्ता की रेखांए उभरती--थोडे समय के लिए और फिर स्वतः ही बैठ जाती। मगर फिर भी शंकर के मां बाप शंकर की हर इच्छा को पूर्ण करने के लिए तत्पर रहते। कालेज से देर से आने पर भी उसे इस बारे में बहुत कम क ते।

शंकर के मां बाप बहुत धनी व्यक्ति थे और शंकर अपने परिवार में उसकी तीन बहिनों के बाद अकेला भाई था। इसी कारण एक ही पुत्र होने से उसे मां बाप का बहुत प्यार मिल रहा था।

शंकर कालेज में बी॰ए॰ फाइनल में था और कला उसका प्रिय विषय था। उसके साथ ही एक साधारण परिवार की लड़की ऊषा भी पढती थी। ऊषा पढने मे बहुत तेज थी और कला की हर श्रेणी को बहुत शीघ्र पकड़ पाती थी। वैसे शंकर

भी पढ़ने में ठीक था। कालेज में उन दोनो की युगल जोड़ी थी। यही कारण शंकर का घर पर देर से आना था। प्रायः कालेज से ऑफ होने के बाद शंकर और उषा के बीच प्रणय की बाते हुआ करती थी।

कल शंकर ने ऊषा से कहा था कि वह उसकी खरीदी हुई साड़ी और ब्लाउज पहन कर आये। इस कारण ऊषा नीली साड़ी और ब्लाऊज में आज कालेज आ रही थी। इस नील वस्त्र मे वह ऐसे लग रही थी जैसे आकाश से कोई नीलम परी उतर आई हो। ऊषा शरमा रही थी। कालेज के लड़के ऊषा को एक टक होकर देख रहे थे। ऊषा की सहेलियां आज उसे व्यंग के मीठे बाणों से भेदेगी—यह ऊषा जान रही थी।

इतने मे शंकर आ गया! उसने ऊषा को अपने से पहले आया देखकर कहा "वाह आज इतनी जल्दी कैसे?" उसने फिर कहा "ओह! समझा—आप ऊषा जी नही, शायद देवलोक की परी नीले वस्त्रो में स्त्री रूप धारण कर संसार को ठगने आई हैं, या फिर किसी ऋषि महात्मा का अखण्ड तप बीच में ही भंग करने पधारी है।" शंकर आगे कुछ और कहे उससे पहले ही ऊषा ने टोकते हुऐ शोखी से कहा "अच्छा रहने दीजिए—सच सच बतलाइये ना कैसी लग रही हूं?"

शंकर ने ऊषा की तरफ जरा मस्ती की निगाहों से देख कर कहा "बता तो दिया बहुत सुन्दर—ब्युटी क्वीन।" ऊषा

अपने को शंकर के बिल्कुल समीप देख सकुचा रही थी। शंकर ने फिर कहा "ऊषा बात यह है कि मुझे नीली साड़ी बहुत पसन्द है-सचमुच तुम्हारा रूप इस भेष मे निखर रहा है, दिल करता है हमेशा तुम्हे देखता रहूं-देखता रहूं और बस !"

"अरे तुम भी कैसे हो, बिल्कुल भोली बाते करते हो, तुम हमेशा मेरे पास रहोगे शंकर, मैं——मैं तुम्हा .... ।" ऊषा ने कहा — और उसने अपनी निगाहे फेर ली। वह समझ गया कि ऊषा रो रही है। शायद सोच रही हो कि शंकर और ऊषा का साथ कैसे हो सकता है। एक धनी बाप का बेटा एक साधारण स्थिती की लड़की से कैसे सम्बन्ध स्थापित कर लेगा।

इन धन वालों को तो धन चाहिए। धन के सामने प्यार की हमेशा बलि चढती है-होम होता है। वह यह सब सोच रही थी कि शंकर ने कहा "चुप क्यों हो गई—कहो जो कहना है हां एकदिन हम एक हो सकेंगे ऊषा। तुमसी साधारण परिवार की लड़की को ही मैं अपना साथी बनाऊंगा—ऊषा, विश्वास रखो, हमें कोई ताकत जुदा नहीं कर सकता।"

आज ऊषा और शंकर का क्लास में मन नहीं लग रहा था। वे बार बार एक दूसरे को देख लेते थे। दोनों खोये खोये प्रतीत हो रहे थे। ऊषा समझ रही थी कि मैंने भी जीवन में कुछ पाया है और शंकर समझ रहा था कि मैंने भी जीवन मे

किसी को सहारा देने का निश्चय किया है। दोनो अनमन्यस्क से क्लास से बाहर निकले और दूर दालान में जाकर बैठ गये जहां शांत, नीरव वातावरण में दो प्रणय भरे दिल ही धड़क रहे थे।

शंकर की मां अपने बेटे की शादी के लिए हमेशा शंकर के पिताजी से कहती रहती थी। शंकर के पिताजी भी सोच रहे थे कि अब शंकर शीघ्र ही बी. ए. कर लेगा और बाद में इसकी शादी भी शीघ्र ही करनी चाहिए। उसके लिए योग्य वधू की खोज में मां बाप दोनो लगे हुवे थे। लेकिन शंकर अपने मां बाप का इतना प्रिय होते हुऐ भी शादी के बारे में उन्होंने उससे कोई बातचीत नहीं की और शंकर की शादी की तैयारी शुरू करदी।

यदि शंकर के मां बाप इस महत्व शाली कार्य मे शंकर से जरा भी सहयोग लेते तो उनकी बहुत कुछ जिम्मेवारी तथा कार्य हल्का हो सकता था। मगर पुराने रीति रिवाजो मे जकड़े हुऐ मां बाप बेटे से इस बारे में कैसे सलाह लें।

कुछ दिन पश्चात ही शंकर को यह पता चला कि उसकी शादी के लिए कोई वधू ढूंढ रहे हैं। शंकर झुंझलाया और कुछ भी नहीं समझ पाया।

उसने पहले ही ऊषा को कहा था कि वह अपनी मां से उसकी शादी शंकर के साथ करने को कहे. मगर ऊषा ने कुछ

कहा नहीं। आज शंकर ने ऊषा से फिर कहा "ऊषा, मां को मेरे पिताजी से मिलना चाहिए, अवसर चूक गया तो ...... ।"

ऊषा कुछ भी समझ नही पाई। वह शंकर की तरफ देखती ही रही। लेकिन अब सिर्फ सोचने का समय नहीं था। ऊषा ने कहा "तुम मेरी मां से क्यों नहीं कह देते, लेकिन——। अच्छा शंकर मै खुद ही मां से कहूगी—पर तुम्हे मेरे पास रहना होगा।" उसने देखा, ऊषा के चेहरे पर साहस की एक अद्‌भुत झलक थी।

"हां ऊषा मै तुम्हारे साथ रहूँगा, तुम अवश्य ही सारी बात मां को समझा सकोगी ऊषा, हमे शीघ्र ही चलना चाहिए-देर करना हमें अलगा सकता है।"

ऊषा और शंकर दोंनो ऊषा की मां के पास गये और सारी बात समझाई। वह एक शिक्षित औरत, थी साधारण परिवार का जीवन व्यतीत करती थी, सब कुछ समझ गई। मगर फिर भी वह जान रही थी कि यह मेल हो नही सकता। लेकिन शंकर के पिता का केवल इतना जान लेना मात्र ही दो दिलों के जीवन—मरन का खेल हो सकता है, यह ऊषा की मां अच्छी तरह जानती थी।

सब कुछ जानते हुए भी ऊषा की मां साहस बटोर कर अपनी लड़की के सुख के लिए एक धनी व्यक्ति का बेटा मांगने जा रही थी। उसे अपनी लड़की के सुख के लिए सब अपमान

सहने मंजूर हैं, यदि उसकी लड़की सुखी रहे। इसी कारण एक न होने वाले रिश्ते की मांग आज ऊषा की मां करने जा रही थी।

ऊषा की मां शंकर के पिताजी से शंकर को मांग रही थी। वह उनका निर्मल प्रेम शंकर के पिताजी को समझा रही थी। मगर एक लोभी और धनी व्यक्ति इन सब बातों को केवल ढकोंसला और मानहानि समझ कर कोई विचार नहीं करता है।

ऊषा की मां की बात को सुन कर शंकर के पिताजी झल्लाये, गर्माए और ऊषा की मां को बहुत कुछ अपमानजनक शब्द कह डाले। वे उनके उज्ज्वल प्रेम को नहीं समझ पा रहे थे। ऊषा की मां उदास मन शंकर के पिताजी के यहां से जा रही थी, मगर जाते जाते उसने यह कह ही दिया "सेठ साहब उनका निर्णय पक्का है, उनके प्यार को कोई भी नहीं छीन सकता।"

ऊषा की मां जा रही थी कि शंकर आ गया। उसने उन्हे देखते ही कहा "ओह माताजी जा कहां रही हैं आप चलिए अन्दर, हमारे भाग्य का निर्णय———।"

"बेटा। मत पूछो,———, न होने वाली बात कैसे हो सकती है। तुम ऊषा को भूल जाओ वह कदापि तुम्हारी नहीं हो सकती एक साधारण परिवार की बेटी को एक धनी परिवार कैसे स्वीकार कर सकता है? बेटा तुम भूल जाओ उसे——
——यह असम्भव है।"

शंकर मग्न सा रह गया। फिर उसने कहा "माताजी आज साधारण और धनी सभी को समान अधिकार हैं-असम्भव कुछ नहीं, उषा हमेशा मेरी रहेगी। पैसे के मोल में प्यार नहीं बिकता, माताजी। आज धनी और गरीब का सवाल नहीं है-सवाल है योग्यता का। ऊषा योग्य है—धनी परिवार को उसे स्वीकार करना होगा। ऊषा मेरी है उसे कोई नहीं छीन सकता।"

ऊषा की मां ने कहा "बेटा।" वहा आगे कुछ कह रही थी मगर उनका गला रूंधगया कोई शब्द नहीं निकला। शंकर ने कहा "आप जाओ माताजी, ऊषा से कुछ न कहना। मैं पिताजी से मिलूंगा।"

शंकर के पिताजी कुछ समझ नहीं पा रहे थे। लाखों का दहेज ऊषा के यहां कहा था। वे इस सम्बन्ध को रुपयों से तोल रहे थे। मगर ऊषा की मां के अन्तिम शब्द उनकी मुसिवत को वार वार ताजा बना रही थी। शंकर के पिताजी भंवर में फंस गये थे। वे किसी प्रकार का भी निर्णय नहीं निकाल पा रहे थे। एक तरफ लाखों की धन दौलत और दूसरी तरफ थे ऊषा की मां के अन्तिम शब्द।

शंकर अपने पिताजी के पास सहमा हुआ सा आया और कहा "पिताजी हर महत्व पूर्ण वात में मुझ से भी कुछ

पूछा जाता था, लेकिन मेरी शादी जैसी महत्व पूर्ण बात मे
हमारे जीवन भर के बन्धन है, उसमें मेरी सलाह नहीं ली
रही है। ऊषा की मां को मैंने भेजा था, मै उसे चाहता हूं
धन नहीं चाहिए—योग्यता की जरूरत है। ऊषा मे वे सब
है जो होने चाहिए। योग्यता हुई तो हम स्वंय धन पैदा
सकते हैं, पिताजी। आदमी पैसे को पैदा करता है, पै
आदमी को पैदा नहीं करता। आप प्यार और दौलत को
तराजू से तोलना चाहते हैं—जो मेरे लिए ही नहीं अपितू आ
लिए भी घातक है। आप अपने बेटे का गला अपने हा
घोंटना चाहते है।"

"बेटा .... ।" आगे कुछ मत कहो शंकर।

बाप अपने हाथों अपने लाडले का गला नही घोंट सकता
मगर एक साधारण परिवार की लड़की से...... ।" अब शं
के पिताजी क्रोध में आगये थे। उन्होंने आवेश में कह दि
"शंकर। ऊषा से तुम्हारी शादी नही हो सकती।"

"पिताजी———। ऐसा मत कहो पिताजी। हमा
जीवन का सवाल है, आप प्यार और दौलत को एक तराजू
मत तोलिए पिताजी।" वह उनके पैरो में गिर गया

शंकर के पिताजी काफी तेज हो चुके थे। उन्होंने
के बाद हां नहीं की। पिताजी का क्रोध शंकर को सीमा लां
के लिए बढावा दे रहा था। उसने पिताजी को बहुत समझा

मगर कुछ भी नहीं बन पाया। अन्त मे शंकर को भी कहना पड़ा पिताजी मेरा भी यह निर्णय है कि ऊषा शंकर की रहेगी. वह योग्यता चाहता है; दौलत नहीं, अपने हांथो अपने पैर में कुल्हाड़ी नहीं मार सकता

शंकर चला गया। वह सीधा ऊषा के यहां गया। ऊषा उसकी बाट जो रही थी। शंकर को उदास देख उसने कहा 'शंकर क्या नतीजा निकला शंकर ने कहा "ऊषा हमें दृढ रहना चाहिए। हम अविवाहित्त हैं, हमारे पर कोई प्रतिबन्ध नहीं है। पिताजी एक दिन अवश्य मान जायेंगे।"

ऊषा ने कहा "हां-हां एक दिन हम एक होंगे तब हमारे पर किसी प्रकार का प्रतिबन्ध नहीं होगा। हम स्वच्छन्द विचरण कर सकेंगे।"

और अब दोनो शांत थे।





पागल

"पागल !"

....वह आगया पागल ! सड़क पर घूम रहे श्री को देख कर लड़के चिल्लाते हैं और उसे कहते हैं 'पागल एक तस्वीर तो बना !" श्री रेत मे अंगुली से किसी लड़की का चित्र आंकदेता। फिर थोडी देर तक उसे देखता है, फिर लड़कों से पीछा छुड़ा कर भाग खड़ा होता है।

वह सड़क पर खड़ा तेज धूप मे भी गुनगुनाता रहता है। कुछ कहता रहता है-उन लोगों से जो अपने कार्य पर कहीं जा रहे होते हैं, कहीं से आते होते हैं।

वैसे श्री कोई पागल नहीं है। उसके हृदय में समाज का विद्रोह भरा हुआ है। वह सोचता है कि इस समाज में यदि कोई पागल बन कर भी रहे तो ठीक है और कलाकार बन कर रहे तो ठीक। यहां कलाकर और पागल बराबर है।

कभी श्री एक ऐसा युवक था जिसे अपने मां बाप का पता नहीं था। उसे करीब दस वर्ष की आयु में एक स्कूल में भर्ती

करवाया था। याद नही कि उसे स्कूल मे किसने दाखिल करवाया था। बस यह याद आता है कि एक प्रौढ औरत जो ५० के करीब की होगी—प्राय: सफेद साड़ी रखा करती थी वही उसे भर्ती करवा गई थी। दो साल तक तो वह छुट्टियों मे उसके यहां जाता रहा। वह औरत छुट्टियां होते ही उसे लिवाने आ जाती थी। तीसरे वर्ष श्री को अकेले दो महीने तक होस्टल मे रहना पड़ा। उस वर्ष वह नौवे दर्जे मे था। वह पढ़ने मे बड़ा तेज था। वह औरत सायद श्री की मां ही होगी जो श्री को इस वर्ष बाद नही मिली, शायद वह मर गई।

श्री को कुछ पता नही कभी कभी उसे उसकी याद आती है तो वह रोने लगता है, रात मे उसे भयानक स्वप्न दीखते हैं, वह बहकता है; हंसता है और फिर रोने लगता है।

श्री को उस औरत का कुछ पता नहीं चला। वह उसकी एक मात्र सहारा थी। उसे बस यह पता चला कि वह इस संसार मे नहीं रही क्यों नहीं रही उसे क्या पता?

श्री की विशेप कर कला मे अधिक रूचि थी। वह कविता, कहानी लिखा करता था, तथा सफल चित्रकार होना चाहता था। उसने चित्रकला का अभ्यास करना शुरु कर दिया था।

दो वर्ष के अभ्यास के बाद वह बहुत ही सुन्दर चित्र बना लिया करता था। उसके जीवन मे एक लड़की आई। तितली की तरह मंडरा गई ... नही ... श्री को वह हृदय से चाहने लगी।

उस लड़की का नाम इन्दु था और उसके पिता कुशल व्यापारी के साथ साथ कला प्रेमी भी थे। पैसे के बल पर कला खरीदना और उसे नीहारना ''बस उनकी कलाकार आत्मा इतना ही जानती थी। कलाकार के हृदय में कैसी हूक होती है—उसे वह क्या जानते ?

इन्दु भी कलाकार बनना चाहती थी। एक सफल कलाकार अपने पिता की तरह नहीं जो केवल कला को पैसे के बल पर मोल लेना ही जानते थे। कला को जीवन-दान देने की उसकी इच्छा थी।

इन्दु अपने इस जीवन में श्री को पाकर कृत्त-कृत्य हो गई थी लेकिन उसे यह मालूम नहीं था कि यह एकत्व नित्य ही रह सकेगा या नहीं।

जब श्री ने अपना दो साल का ड्राइंग का कोर्स खत्म करके नया कोर्स शुरू किया था तब इन्दु उसके जीवन में आई थी। उसने इन्दु के कई चित्र बनाये। कुछ एक चित्रों पर उसे पुरस्कार भी मिला।

इन्दु के पिता उसे बी. ए. के बाद आगे पढ़वाना नहीं चाहते थे। इन्दु को कालेज छोड़ देना पड़ा। वह अब बडी भी काफी हो गई थी अतः उसकी शादी के लिये वर की खोज भी शुरू हुई।

इन्दु को भी इस बात का पता चला। वह प्रायः शाम को बाहर घूमने जाया करती थी। आज भी इन्दु ने अपनी कार पोर्च से बाहर निकाली और श्री के यहां गई। उस दिन इन्दु के पिता कहीं बाहर गये हुये थे और मां से पता चला कि वे देर से आयेंगे।

श्री एक किराये के कमरे में रहता था। वह अकेला था। उसके साथ अपनी कला थी या इन्दु। लेकिन ...। उसे भय था कि इन्दु के पिता इन्दु को उसकी बनने देंगे या नहीं। श्री आज कल यही सोचा करता था और इन्दु से मिले उसे करीब दस दिन हो चुके थे।

गाडी का हार्न बजा। वह कमरे से बाहर आया। खट खट जूतों की आवाज। जानी पहचानी। तभी इन्दु ऊपर आ गई। और श्री ने व्यंग मे कहा "यह है कलाकार श्री का घर, दम तो नहीं छूटेगा ?

तब तक इन्दु कमरे मे आकर बैठ चुकी थी। उसका मन उदास था। चेहरा उतरा हुआ नजर आ रहा था। श्री ने पूछा "क्या हुआ, उदास क्यों हो "

वह टालना चाहती थी, उसने कहा "कुछ नहीं योंही।" मगर वह टाल न सकी। उसने कह दिया "श्री श्री पिताजी मेरे लिये लड़का ढूंढ रहे है। आज मौका देख कर तुमसे मिलने

आइ हूँ, तो तुमने भी मेरा मजाक उड़ाना शुरू किया।"

"नहीं इन्दु, ऐसा नहीं हो सकता। देखो तुम्हारी ही प्रेरणा से तो मैं आज इतना विख्यात हुआ हूं। यदि तुम नहीं रहोगी तो मेरा कोई ...." उसे रुलाई आने लगी। कण्ठ रुध गये वह आगे बोल नहीं सका।

कुछ देर बाद इन्दु ने कहा "मुझमें इतनी ताकत नहीं कि पिताजी को कुछ कहुं, आखिर मे लडकी हूँ मगर . . ."

श्री ने कहा "मैं मिलूंगा उनसे, इन्दु! . . ." कुछ देर दोनों चुप रहे। फिर इन्दु ने ही मोन तोड़ते हुवे कहा "अच्छा जाती हूँ, पिताजी आने वाले होंगे "

एक सप्ताह बाद वह इन्दु के पिता से मिला सारी बात बताई मगर इन्दु के पिता ने उसे बदमाश, लम्पट और न मालूम क्या क्या कहा। श्री सुनता रहा फिर मार खाया सा वहां से चला आया।

इन्दु की शादी तय हो गई वह मर जाना चाहती थी मगर ...... नहीं मर सकी वह अन्दर ही अन्दर रोती रही और श्री . उसने आजीवन अविवाहित रहने का निश्चय कर लिया। उसने देखा यहां कला का नहीं धन का मोल होता है। तभी इन्दु के पिता ने उसे प्यार नहीं दिया था, हतोत्साहित किया था। कलाकार का अपमान भगवान का अपमान था "

इन्दु के बाद श्री बिल्कुल निराश सा हो गया। उसका न कला में दिल लगता न किसी और ही काम में। कुछ दिनों बाद वह पागलों की तरह घूमने लगा। इधर उधर दौड़ने लगा। वह चलते लोगों से कहता "क्या आप कलाकार के दिल को देख सकते हो, पहचान सकते हो उसके जीवन को।" और लड़के उसे पागल कहने लगे।

× × ×

श्री की तरह ही डा० शुक्ला के साथ हुआ था। श्री के कलाकार हृदय को चोट लगी थी और शुक्ला का हृदय कठोर था, वह इन सब फफोलों को सहन कर गया।

शुक्ला को भी नारी जीवन से एक ऊब सी हो गई थी, इसी कारण उसने नारी को अपने जीवन में एक संगिनी के रूप में नहीं आने दिया। वह अविवाहित ही रहा।

पहले पहल शुक्ला के जीवन में भी एक लड़की आई थी जो उसे चाहती थी। मगर वह इन्दु की तरह हो कर नहीं आई। वह आई हवा के किसी झौंके की तरह और कुछ दिनों बाद चली गई। एक बार शुक्ला को भी काफी क्षोभ हुआ।

शुक्ला नारी से दूर हो चुका था। उसका जीवन उन युवकों की सेवा करने का इच्छुक था जो अपने जीवन के अमूल्य क्षणों को युंही गवां देते हैं। वह मनोवैज्ञानिक ढग से उन

युवकों को ठीक करना चाहते थे।

इसी कारण उसने किसी धनी सेठ को अपनी योजना बताई थी। सेवा के लिये अपने अमूल्य समय की आहुति देने को तैयार हुआ और सेठ के सहयोग से एक संस्था खोल ही ली। वह आवारा घूमते हुए लोगों को अपनी संस्था मे लाया। उसने उन लोगों के विचारों, हाव भाव पर मनन किया और उनको मनोवैज्ञानिक ढग से ठीक किया। शुक्ला की चारों ओर ख्याति फैल गई। उसने श्री के मस्तिष्क पर परीक्षण कर उसे भी ठीक किया

श्री ठीक हो गया। अब वह न पागलों की तरह घूमता था और ना ही बकता था। वह जीवन के अमूल्य क्षणों को समझने लगा। धीरे-धीरे उसकी सोई हुई इच्छाएं जागृत हुई। इन्दु जो उसकी नही हो सकी थी उसे वह हृदय से निकालने की कोशिश करने लगा।

और इधर इन्दु अपने पिता द्वारा थोपे गये पति को हृदय में पति का स्थान नहीं दे सकी, समय पाकर उसने आत्म हत्या करली।

औरत होने के कारण, वह जीवन से, समाज से संघर्ष नहीं कर सकी।

श्री के हृदय में भी गहरी चोट लगी, वह चच कर इन्दु को नहीं बचा सका। वह अन्दर ही अन्दर इस घातक समाज

पर रोया जिसने इसकी कला में अधूरापन ही रखा।

वह अब भी कलाकार है। चित्र बनाता है, पुरस्कार भी पाता है मगर अब उन चित्रों के रंगों में वह निखार नहीं झलकता है।

इन्दु के अभाव में श्री की तुलिका थक जाती है और....।

जीवन फिर भी चल रहा है, चित्र फिर भी बन रहे हैं।



नौकरी नहीं मिली मुक्ति मिल गई।

एक समय वह आता है जब मनुष्य को ऐसी चीज से घृणा हो जाती है जिसके बीच उसका बचपन पलता है, वह बड़ा होता है।

रमेश दो माह से नौकरी की खोज में था, लेकिन अभी तक कोई जगह नही मिली आज पता नहीं किस के भाग्य से उसे एक सूचना मिली कि पोस्ट एंव रेल विभाग ने जो हड़ताल की है, उस विभाग में अस्थाई रूप से नौकरीयां मिल रही है। रमेश भी गया लेकिन उसके पंहुचने से पहले ही वहां मिलटरी के आदमी तेनात हो गये।

रमेश को हतास होना पड़ा। उसने अपनी साईकल और पोस्ट ऑफिस के उस बड़े भवन से अनमना सा वापिस निकल आया। उसे लग रहा था कि आज उसके पैरों को पाला मार गया है जैसे वे जड़ हो गये हों उससे साइकल का पैडल नहीं लग रहा है।

रमेश का दूर का सवम्धी जो उसके मोहल्ले में रहता

था, अच्छा—रुपये वाला असामी था। उसका काम भी काफी फैला हुआ था। सामने से वह आ रहा था, रोका और पूछने लगा "नौकरी का क्या हुआ रमेश ?"

रमेश ने जवाब दिया "जी अभी तो कुछ नहीं हुआ, कोशिश कर रहा हूं मिल ही जायेगी। फिर आप जैसों की कृपा तो है ही मुझपर।"

वह जानता था उनके सम्बन्धी सेठ प्रवीणचन्द्र ने उस से क्यों यह सवाल पूछा है, इसीलिये उसके जवाब में भी स्वाभिमान था। सेठ का मुंह उतर गया, उन का व्यंग उन्हीं पर लौटा दिया रमेश ने।

कल की बात है यही सेठ प्रवीणचन्द्र अपनी चौपाल पर बैठा कह रहा था "एक यह रमेश है दो माह हो गये, नौकरी नही मिल रही है। कौन दे भला इनको नौकरी। हम व्यापारी तो ऐसों को घर मे पैर भी नहीं रखने देते जो किसी भी समय अपने मालिक का मुखबिर बन सकते है !"

आज ये सेठ जो अपने नौकरों को पूर्ण वेतन नहीं देते हैं। उनका पेट नहीं भरता, उनके बच्चों को अच्छी शिक्षा नहीं मिलती, पहनने को अच्छे वस्त्र नहीं मिलते और खाने को पोस्टिक खाना नहीं मिलता, वही अपने धन के बल पर मोहल्ले के पूज्य बने है।

बावजूद इसके भी रमेश की तरह के सैकड़ो युवक अपनी

वह चलता रहा अनमना सा जैसे कोई शराबी चलता हो। दो तीन बार उसने चलते व्यक्तियों से, साइकिल, रिक्शे वालों से टक्कर भी खा ली।

रमेश का सिर घूम रहा था। न मालूम रमेश की तरह आज कितने युवक नौकरी की तलाश में मन मारे घूमते हैं। और इसी तरह उनका सिर घूमता है- उनकी आत्मा विद्रोह करती है; और फिर एक गहरी निराशा उनको लपेट लेती है अपने में। सूरज डूब चुका है; झुटपुट अंधेरे के उतर जाने के कारण सड़क की बिजली जल चुकी है। परेशान रमेश शहर से काफी दूर पार्क की तरफ जाने वाली सड़क की ओर घूम जाता है। साइकिल के पेडल धीरे—धीरे लग रहे हैं। बदन पर ठंडी हवा स्पर्श दे रही है।

वह थोड़ी दूर चलता है, फिर म्यूनिस्पेलिटी की रोशनी के खम्मे के पास रूक जाता है। वहां एक अखबार का टुकड़ा पड़ा मिलता है। रमेश उसे उठा लेता है और यों ही देखने लगता है। उसे इधर उधर घुमा कर बार—बार देखता हैं।

उसने कागज को अपने कोट की जेब में डाला। यह भी कैसा आदमी है। सड़क पर पड़े कागज को उठाया, देखा, और उसे फिर अपनी जेब में डाला, साइकिल घुमाई और घर की तरफ चल दिया। कैसा क्रम है।

आया तो था पार्क में कुछ देर घूमने ताकि घर की

चिन्ताओं से कुछ देर के लिये मुक्ति मिल जाये; ताकि घर में माँ यह नहीं पूछे कि नौकरी मिली या नहीं, पर वह पार्क तक नहीं गया। लौट पड़ा वहां से।

घर आया। मां दरवाजे पर खड़ी बाट देख रही थी।

"क्या हुआ बेटा।" माँ ने पूछा।

रमेश ने कोई जवाब नहीं दिया। अन्दर आकर खाट पर बैठ गया। मां ने कहा "मान जाओ बेटा, आखिर कब तक इस तरह ठोकर खाते फिरोगे।"

अब रमेश से नहीं रहा गया। उसने ठहाका मार कर कहा "मां तुम नाहक परेशान होती हो। आखिर क्या जल्दी है। कुछ दिन भूखा मरलेने दो, दुनिया कैसी है यह देख लेने दो. नौकरी तो एक दिन मिलेगी ही।"

नित्यक्रम के अनुसार रमेश आज भी जल्दी उठा। कोट की जेब से अनावश्यक कागज निकाल कर मेज पर रखे और साइकिल उठा कर घर से निकल गया।

आज वह ऐसी जगह जा रहा था जहां उसे पूर्ण आशा थी। लेकिन................ ....

कालेज के दिनों में रमेश उनके यहां कई बार गया हुआ है। उन दिनों सतीश गुप्ता जिनके यहां रमेश अभी जा रहा था, सांईस मे रिसर्च कर रहे थे और आज आल इण्डिया आयल एण्ड सर्वे कमीशन के चीफ इंचार्ज हैं।

बोले मानवता सीखो। एक बड़ा अफसर होकर जिसे तुम भूल रहे हो वह तुम्हारे पास नहीं आयेगा। मैं तो थूकता हूं ऐसे व्यवहार पर। अपने जीवन को आत्मा के दर्पण से देखो। कितना घिनौना है।

"रमेश"

और नीना अब भी रमेश की खोज करवा रही थी। मगर रमेश अभीतक उसे नहीं मिलपाया था, नजाने वह कहां चला गया था, किस-किस दफ्तर-दूकान में ठोकर खा रहा था। नीना फिर भी मां से यही कहती "मां मुझे विश्वास है रमेश एक दिन जरूर आएगा, मेरी मांग वह एक दिन जरूर अपने हाथों से भरेगा।"



मुद्रक

जवाहर प्रेस बीकानेर